क्या आप जानते हो कि पैलिंड्रोम क्या हैं? ये वर्णों के समूह हैं जिन्हें आगे व पीछे दोनों तरफ से पढ़ने पर एक ही शब्द बनता है जैसे 'मलयालम'। शब्द पैलिंड्रोम और डीएनए पैलिंड्रोम में अंतर है। डीएनए में पैलिंड्रोम क्षारक युग्मों का एक ऐसा अनुक्रम होता है जो पढ़ने के अभिविन्यास को समान रखने पर दोनों लड़ियों में एक जैसे पढ़ा जाता है। उदाहरणार्थ- निम्न अनुक्रमों को '5 → 3' दिशा में पढ़ने पर दोनों लड़ियों में एक जैसा पढ़ा जाएगा। अगर इसे 3' → 5' दिशा में पढ़ा जाए तब भी यह बात सही बैठती है-

5' — जी ए ए टी टी सी — 3'

(GAATTC),

3' — सी टी टी ए ए जी — 5'

(GAATTC)

प्रतिबंधन एंजाइम डीएनए लड़ी को पैलिंड्रोम स्थल के केंद्र से थोड़ी दूरी पर लेकिन विपरीत लड़ियों में दो समान क्षारकों के बीच काटते हैं। जिसके फलस्वरूप सिरों पर एक लड़ीय भाग रह जाता है। प्रत्येक लड़ी में प्रलंबी फैलाव मिलते हैं जिन्हें चिपचिपा

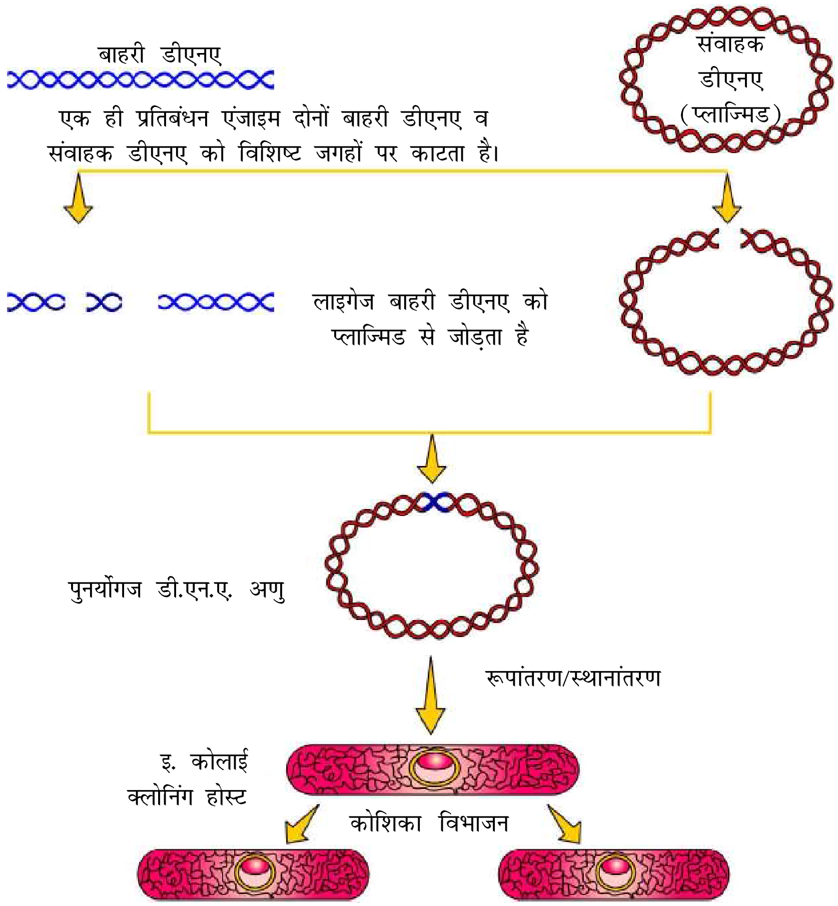

चित्र 11.2 पुनर्योगज डीएनए तकनीक का आरेखीय प्रदर्शन

(स्टिकी) सिरा कहते हैं (चित्र 11.1)। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह अपने पूरक कटे प्रतिरूप के साथ हाइड्रोजन आबंध (बॉन्ड) बनाते हैं। सिरों का यह चिपचिपापन एंजाइम डीएनए लाइगेज के कार्य में सहायता प्रदान करता है।

प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज का उपयोग आनुवंशिक इंजीनियरिंग में डीएनए के पुनर्योगज अणु बनाने में किया जाता है जो विभिन्न स्रोतों या जीनोमों से प्राप्त डीएनए से मिलकर बना होता है।

एक ही प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा काटने पर प्राप्त होने वाले डीएनए खंडों में समान प्रकार को 'चिपचिपे सिरे' होते हैं, जो डीएनए लाइगेज की सहायता से आपस में (किनारे से किनारा) जुड़ जाते हैं (चित्र 11.2)।

आप पूर्ण रूप से समझ चुके होंगे कि सामान्यत: जब तक संवाहक व स्रोत डीएनए एक ही प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा नहीं काटे जाते हैं तब तक पुनर्योगज संवाहक अणु का निर्माण नहीं हो सकता है।

डीएनए खंड का पृथक्करण एवं विलगन- प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज द्वारा डीएनए को काटने के परिणामस्वरूप डीएनए का खंडन हो जाता है। इन खंडों को एक तकनीक द्वारा अलग कर सकते हैं जिसे **जेल वैद्युत का संचलन (इलेक्ट्रोफोरेसिस)** कहते हैं। चूँकि डीएनए खंड ऋणात्मक आवेशित (चार्जड) अणु होते हैं, इसलिए इन्हें विद्युत क्षेत्र में माध्यम / आधात्री द्वारा ऐनोड की तरफ बलपूर्वक भेजकर अलग कर सकते हैं। आजकल बहुत ही सामान्य रूप से उपयोग किया जाने वाला माध्यम, ऐगारोज है जो समुद्रीय घास (सी वीडस) से निकाला गया एक प्राकृतिक बहुलक (पॉलिमर) है। डीएनए खंडों को ऐगारोज जेल के छलनी प्रभाव द्वारा उनके आकार के अनुसार अलग करते हैं। इस कारण खंड जितने छोटे आकार के होंगे, वे अधिक दूर तक जायेंगे। चित्र 11.3 देखिए और अनुमान लगाइए कि जेल के किस सिरे पर प्रतिदर्श (सेंपल) लादा गया था।

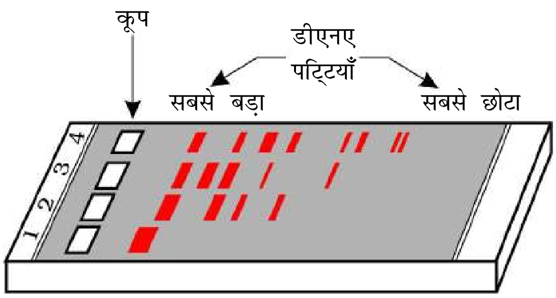

चित्र 11.3 एक प्रारूपी एगरोज जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस जो असार संग्रही (पथ 1) व सार संग्रही डीएनए खंडों के समूह का स्थानांतरण प्रदर्शित करता है (पथ 2 से 4)

पृथक्कृत डीएनए खंडों को तभी देख सकते हैं जब इस डीएनए को इथीडियम ब्रोमाइड नामक यौगिक से अभिरंजित कर पराबैंगनी विकिरणों से अनावृत्त करते हैं। (आप शुद्ध डीएनए खंडों को दृश्य प्रकाश में बिना अभिरंजित किए नहीं देख सकते।) इथीडियम ब्रोमाइड अभिरंजित (स्टेन्ड) जेल को पराबैंगनी प्रकाश से अनावृत्त करने पर डीएनए की चमकीली नारंगी रंग की पट्टी दिखाई पड़ती है (चित्र 11.3)। डीएनए की पृथक्कृत पट्टियों को ऐगारोज जेल से काट कर निकालते हैं और जेल के टुकड़ों से निष्कर्षित (एक्सट्रेक्ट) कर लेते हैं। इस प्रक्रिया को क्षालन (इलूसन) के कहते हैं। इस तरह से शुद्ध किए गए डीएनए को क्लोनिंग संवाहक से जोड़कर, पुनर्योगज डीएनए निर्माण में उपयोग किया जाता है।

11.2.2 क्लोनिंग संवाहक

आप जानते ही हैं कि प्लाज्मिड व जीवाणुभोजी, जीवाणु कोशिकाओं में, बिना गुणसूत्रीय डीएनए नियंत्रण के स्वतंत्र रूप से प्रतिकृति करने की क्षमता रखते हैं। जीवाणुभोजियों की प्रत्येक कोशिका में काफी अधिक संख्या होने से जीवाणु कोशिका में इनके जीनोम की कई प्रतिकृति मिलती है। कुछ प्लाज्मिड की, प्रतिकोशिका केवल एक या दो जबकि दूसरों की 15 से 100 प्रतिकृति मिलती है। इनकी संख्या इससे भी ज्यादा हो सकती है। यदि हम विजातीय डीएनए खंड को जीवाणुभोजी या प्लाज्मिड डीएनए के साथ जोड़ सकें तो इनकी संख्या को भी जीवाणुभोजी या प्लाज्मिड की प्रतिकृति संख्या के समान गुणित कर सकते हैं। वर्तमान समय में उपयोग किये जा रहे संवाहक इस प्रकार से तैयार किए जाते हैं कि इन्हें बाहरी डीएनए से जोड़ने व अपुनर्योगिजों से पुनर्योगजों के चयन में सहायता मिलती है।

संवाहक में क्लोनिंग करने हेतु निम्न विशेषताओं की आवश्यकता होती है—

(क) ***प्रतिकृतियन का उत्पत्ति (ori का प्रारंभ)*** — यह वह अनुक्रम है जहाँ से प्रतिकृतीयन की शुरुआत होती है और जब कोई डीएनए का कोई खंड इस अनुक्रम से जुड़ जाता है तब परपोषी कोशिकाओं के अंदर प्रतिकृति कर सकता है। यह अनुक्रम जोड़े गए डीएनए के प्रतिरूपों की संख्या के नियंत्रण के लिए भी उत्तरदायी है। इसलिए यदि कोई लक्ष्य डीएनए की काफी संख्या प्राप्त करना चाहता है तो इसे ऐसे संवाहक में क्लोन करना चाहिए जिसका मूल (ori) अत्यधिक प्रतिरूप बनाने में सहयोग करता है।

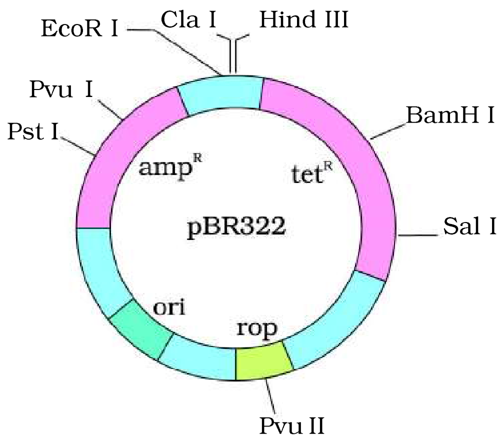

चित्र 11.4 इ. कोलाई क्लोनिंग संवाहक pBR322 में प्रतिबंधन स्थल (*Hind* III, *EcoR* I, *BamH* I, *Sal* I, *Pvu* II, *Pst* I, *Cla* I), ori व प्रतिजैविक प्रतिरोधी जीन (**amp**^{R} व **tet**^{R}) **rop** प्लाज्मिड के प्रतिकृति में भाग लेने वाले प्रोटीन का कूट लेखन करता है।

(ख) ***वरण योग्य चिह्नक*** — 'ori' के साथ संवाहक को वरणयोग्य चिह्नक की आवश्यकता भी होती है, जो अरूपांतरजों (नॉन-ट्रॉन्स्फॉर्मिन्ट्स) की पहचान व उन्हें समाप्त करने में सहायक हो और रूपांतरजों की चयनात्मक वृद्धि को होने दे **रूपांतरण** (ट्रॉन्स्फार्मेशन) एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा डीएनए के एक खंड को परपोषी जीवाणु में प्रवेश कराते हैं। (आप आगे के खंडों में इस प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे)। सामान्यतया एंपिसिलिन, क्लोरैम्फेनिकॉल, टेट्रोसाइक्लीन या केनामाइसीन जैसे प्रतिजैविक (एंटीबॉयोटिक) के प्रति प्रतिरोध कोडित करने (एन्कोडिंग) वाले जीन ई.कोलाई के लिए उपयोगी वरणयोग्य चिह्नक माने जाते हैं। सामान्य ई.कोलाई कोशिकाओं में इनमें से किसी प्रतिजैविक के प्रति, प्रतिरोध नहीं होता।

(ग) ***क्लोनिंग स्थल*** — विजातीय डीएनए को जोड़ने हेतु सामान्यतः काम में लिए जा रहे प्रतिबंधित एंजाइम के लिए संवाहक में कुछ या एक ही पहचान स्थल होना चाहिए। संवाहक के अंदर एक से अधिक पहचान स्थल होने पर इसके कई खंड बन जाते हैं जो जीन क्लोनिंग को जटिल बना देते हैं। (चित्र 11.4) विजातीय डीएनए का बंधन (लीगेशन) उन दोनों प्रतिजैविक

प्रतिरोधी जीनों में से एक में स्थित प्रतिबंध स्थल पर किया जाता है। उदाहरणार्थ आप विजातीय डीएनए को संवाहक पी बी आर 322 (PBR322) में स्थित टेट्रासाइक्लीन प्रतिरोधी जीन के स्थल से जोड़ सकते हैं। पुनर्योगज प्लाज्मिड का टेट्रासाइक्लीन प्रतिरोध बाहरी डीएनए के निवेशन (इन्सर्शन) से समाप्त हो जाता है लेकिन रूपांतरज को टेट्रासाइक्लीन युक्त माध्यम पर फैलाकर इसका अपुनर्योगज से अभी भी चयन कर सकते हैं। एंपिसिलिन युक्त माध्यम पर वृद्धि करने वाले रूपांतरजों को तब टेट्रासाइक्लीन युक्त माध्यम पर स्थानांतरित कर देते हैं। पुनर्योगज एंपिसिलिन युक्त माध्यम पर तो वर्धन करेगा, लेकिन टेट्रासाइक्लीन युक्त माध्यम पर वर्धन नहीं करेगा। लेकिन अपुनर्योगज दोनों ही प्रतिजैविक युक्त माध्यम पर वर्धन करेगा। इस मामले में एक प्रतिजैविक प्रतिरोधी जीन रूपांतरजों के चुनाव में सहायता करता है जबकि दूसरा प्रतिजैविक प्रतिरोध जीन विजातीय डीएनए के 'निवेशन' से निष्क्रिय' हो जाता है और पुनर्योगजों के चुनाव में सहायता करता है।

प्रतिजैविकों के निष्क्रियण के कारण पुर्नयोगज का चयन एक जटिल विधि है क्योंकि इसमें दो प्लेटों, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रतिजैविक होता है, पर साथ- साथ प्लेटिंग की जरूरत होती है। इस कारण से वैकल्पिक वरणयोग्य चिह्नकों का विकास हुआ जो पुर्नयोगजों को अपुर्नयोगजों से इस आधार पर विभेद करता है वे वर्णोकोत्पादकी (क्रोमोजेनिक) पदार्थ की उपस्थिति में रंग पैदा करने में सक्षम होते हैं। इसमें एक पुनर्योगज डीएनए को बीटा गैलक्टोसाइडेज एंजाइम के कोडिंग अनुक्रम में अन्तर्स्थापित करते हैं, जिससे एन्जाइम संश्लेषित करने वाला जीन निष्क्रिय हो जाता है जिसे **निवेशी निष्क्रियता** (इनसर्शनल इनएक्टीवेशन) कहते हैं। यदि जीवाणु में प्लाज्मिड में संसर्गिका (इंसर्ट) नहीं होता है तब वर्णोकात्पादकी पदार्थ की उपस्थिति में नीले रंग को निवह (कालोनी) का निर्माण होता है। संसर्गिका की उपस्थिति के परिणामस्वरूप बीटा-गलैक्टोसाइडेस का निवेशी निष्क्रियण हो जाता है जिससे बिना रंग वाली कालोनी बनती है जिसे पुर्नयोगज कालोनी के रूप में पहचानते हैं।

(घ) ***पौधों व जंतुओं में जीन क्लोनिंग हेतु संवाहक*** — आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जीनों को पादप और जंतुओं में स्थानांतरित करना हमने जीवाणुओं और विषाणुओं से सीखा जिन्हें यह बात चिरकाल से पता थी — वे जानते थे कि सुकेंद्रकी (यूकैरियोटिक) कोशिकाओं के रूपांतरित करने के लिए जीनों का कैसे उपयोग किया जाए और वे (जीवाणु तथा विषाणु) जो चाहते हैं वैसा करने के लिए जीनो को बाध्य करते हैं। उदाहरणार्थ— एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेशिएंस कई द्विबीज पत्री पौधों का रोगजनक पैथोजन है। वह डीएनए के एक खंड जिसे 'टी.-डीएनए' कहते हैं, को स्थानांतरित कर सामान्य पौधों की कोशिकाओं को **अर्बुद (ट्यूमर)** में रूपांतरित करता है और ये अर्बुद कोशिकाएँ रोगजनक के लिए जरूरी रसायनों का उत्पादन करते हैं। ठीक इसी तरह से जंतु कोशिकाओं में पश्चविषाणु (रीट्रोवायरस) सामान्य कोशिकाओं को **कैंसर** कोशिकाओं में रूपांतरित कर देते हैं। रोगजनकों द्वारा

अपने सुकेंद्रकी परपोषी में जीन स्थानांतरण की कला को अच्छी तरह से समझ कर रोग जनकों की इस विधि का उपयोग कर, अच्छे संवाहक के रूप में प्रयोग कर, मानव के लिए उपयोगी जीन का स्थानांतरण कर सकते हैं। एग्रोवैक्टीरीयम टयूमीफेशियंस का टी आई (Ti) प्लाज्मिड क्लोनिंग संवाहक के रूप में अब रूपांतरित कर दिया गया है जो पौधों के लिए रोग जनक नहीं है, लेकिन इसका उपयोग अपनी अभिरूचि के जीन को अनेक पौधों में स्थनांतरित करने में किया जाता है। ठीक इसी तरह से पश्चविषाणु को अहानिकारक बनाकर जंतु कोशिकाओं में वांछित जीन को रूपांतरित करने में उपयोग किया जाता है। इस तरह से जब एक जीन या डीएनए के खंड को उचित संवाहक से जोड़ दिया जाता है तब इसे जीवाणु, पौधों व जंतु परपोषी में स्थानांतरित किया जाता है (जहाँ यह गुणित होता रहता है)।

11.2.3 सक्षम परपोषी आतिथेय (पुनर्योगज डीएनए के साथ रूपांतरण हेतु)

चूँकि डीएनए जलरागी (हाइड्रोफिलिक) अणु है, इसलिए यह कोशिका झिल्ली से होकर नहीं गुजर सकता है। क्यों? जीवाणु को प्लाज्मिड लेने के लिए बाध्य करने से पूर्व यह आवश्यक है कि जीवाणु कोशिका को डीएनए लेते हेतु 'सक्षम' बनाया जाए। ऐसा करने के लिए पहले द्विसंयोजन धनायन (डाइबैलेंट कैटायन) जैसे कि कैल्सियम की विशिष्ट सांद्रता के साथ संसाधित किया जाता है। इससे डीएनए को जीवाणु की कोशिका भित्ति में स्थित छिद्रों से प्रवेश करने में काफी सहायता मिलती है। ऐसी कोशिकाओं को पुनर्योगज डीएनए के साथ पहले बर्फ पर रखा जाता है तब पुनर्योगज डीएनए को उन कोशिकाओं में बलपूर्वक प्रवेश कराया जाता है। इसके बाद उन्हें थोड़े समय के लिए 42 डिग्री. सेल्सीयस (तापप्रघात) पर रखा जाता है और पुन: इसे वापस बर्फ पर रखा जाता है। ऐसा करने से पुर्नयोगज डीएनए जीवाणु में प्रवेश कर जाता है।

परपोषी कोशिकाओं में विजातीय डीएनए को प्रवेश कराने हेतु केवल यही विधि नहीं है। **सूक्ष्म अंत:क्षेपण** (माइक्रोइंजेक्सन) विधि में पुनर्योगज डीएनए को सीधे जंतु कोशिका के केंद्रक के भीतर अंत:क्षेपित किया जाता है। दूसरी विधि जो पौधों के लिए उपयोगी है, कोशिकाओं पर डीएनए से विलेपित, स्वर्ण या टंगस्टन के उच्च वेग सूक्ष्म कणों से बमबारी करते हैं जिसे **बायोलिस्टीक** या **जीन गन** कहते हैं। अंतिम विधि जिसमें 'अहानिकारक रोगजनक' संवाहक का उपयोग किया जाता है। इन सवांहकों को जब कोशिकाओं को संक्रमित करने दिया जाता है तब ये पुनर्योगज डीएनए को परपोषी में स्थानांतरित कर देते हैं।

आप पुनर्योगज डीएनए निर्माण के तरीकों के बारे में सीख चुके होंगे। अब उन प्रक्रमों का वर्णन करेंगे जो पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने में सुगम बनाते हैं।

11.3 पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी के प्रक्रम

पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) चरण विशिष्ट अनुक्रम में सम्मिलित हैं जैसे डीएनए का विलगन (पृथक्करण), डीएनए का खंडन, डीएनए खंड का संवाहक से

बंधन, पुनर्योगज डीएनए का परपोषी में स्थानांतरण, परपोषी कोशिकाओं का माध्यम में व्यापक स्तर पर संवर्धन व वंछित उत्पाद का निष्कर्षण। अब इन सभी चरणों की थोड़ा विस्तृत रूप में अध्ययन करेंगे।

11.3.1 आनुवंशिक पदार्थ (डीएनए) का पृथक्करण

याद रखें कि बिना अपवाद के सभी जीव का आनुवंशिक पदार्थ न्यूक्लिक अम्ल है। अधिकांश जीवों में यह डिऑक्सीराबोन्यूक्लिक अम्ल या डीएनए है। डीएनए को प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा काटने के लिए यह आवश्यक है कि यह दूसरे वृहद्-अणुओं से मुक्त, शुद्ध रूप में होना चाहिए। डीएनए झिल्लियों से घिरा रहता है इसलिए कोशिका को तोड़कर खोलना पड़ेगा ताकि डीएनए दूसरे वृहद अणुओं जैसे आरएनए, प्रोटीन, बहुशर्करा, लिपिड के साथ मोचित (रिलीज) हो सके। यह तभी संभव है जब जीवाणु कोशिका/पादप या जंतु ऊतक, **लाइसोजाइम** (जीवाणु), **सेलुलेज** (पादपकोशिका), **काइटिनेज** (कवक) जैसे एंजाइम द्वारा संसाधित किए जाते हैं। आप जानते हो जीन डीएनए के लंबे अणुओं पर स्थित होते हैं व हिस्टोन जैसे प्रोटीनों के साथ गुँथे रहते हैं। आरएनए को राइबोन्यूक्लियेज से उपचारित कर अलग कर सकते हैं जबकि प्रोटीन को प्रोटीएज से उपचारित कराने के बाद अलग कर सकते हैं। दूसरे अणुओं को उचित उपचार द्वारा अलग कर सकते हैं। अंततोगत्वा द्रुतशीतित (चिल्ड) एथेनॉल मिलाने से शोधित डीएनए अवक्षेपित (प्रेसिपिटेट) हो जाता है। इसे निलंबन में महीन धागों के समूह के रूप में देख सकते हैं (चित्र 11.5)।

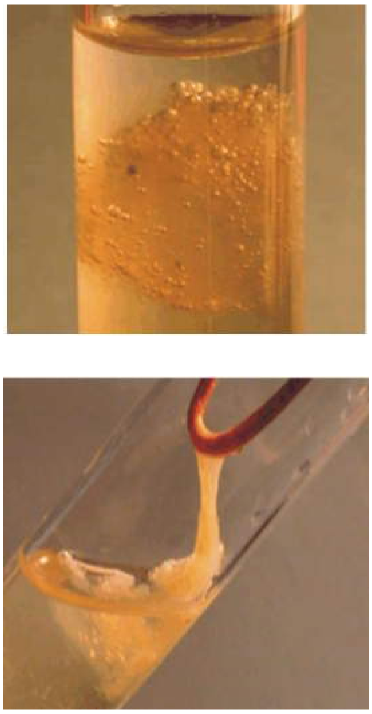

चित्र 11.5 पृथक किए गए डीएनए को स्पूलिंग द्वारा अलग करना

11.3.2 डीएनए को विशिष्ट स्थलों पर काटना

शोधित डीएनए अणुओं को प्रतिबंधन एंजाइम के साथ उनकी इष्टतम (ऑप्टिमम) परिस्थितियों में रखने पर प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा पाचन संपन्न होता है। ऐगारोज जेल वैद्युत का संचलन प्रतिबंधन एंजाइम पाचन को नियंत्रित करने के काम में आता है। डीएनए एक ऋणात्मक आवेशित अणु है। इस कारण से यह धनात्मक इलेक्ट्रोड (एनोड) की ओर गति करता है (चित्र 11.3)। यह प्रक्रम संवाहक डीएनए के साथ भी दोहराया जाता है।

डीएनए के जुड़ने में कई प्रक्रम शामिल हैं। स्रोत डीएनए व संवाहक डीएनए को भी विशिष्ट प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा काटे जाने के बाद, स्रोत डीएनए से कटा हुआ 'उपयोगी जीन' तथा उसकी खाली जगह के साथ संवाहक आपस में लाइगेज द्वारा जोड़ दिए जाते हैं। परिणामस्वरूप एक पुनर्योगज डीएनए का निर्माण होता है।

11.3.3 पीसीआर का उपयोग करते हुए लाभकारी जीन का प्रवर्धन

पीसीआर का अर्थ **पोलीमरेजचेन रिऐक्शन (पॉलिमरेज शृंखला अभिक्रिया)** है। इस अभिक्रिया में उपक्रमकों (प्राइमर्स- छोटे रासायनिक संश्लेषित अल्पन्यूक्लियोटाइड जो

डीएनए क्षेत्र के पूरक होते हैं) के दो समुच्चयों (सेट्स) व डीएनए पॉलिमरेज एंजाइम का उपयोग करते हुए पात्रे (इनविट्रो) विधि द्वारा उपयोगी जीन के कई प्रतिकृतियों का संश्लेषण होता है। यह एंजाइम जिनोमिक डीएनए को टेंपलेट के रूप में काम में लेकर; अभिक्रिया से मिलने वाले न्यूक्लियोटाइडों का उपयोग करते हुए उपक्रामकों को विस्तृत कर देता है। यदि डीएनए प्रतिकृतयेन प्रक्रम कई बार दोहराया जाता है तब डीएनए खंड को लगभग एक अरब गुना (एक बिलियन) प्रवर्धित किया जा सकता है अर्थात् एक अरब प्रतिरूपों का निर्माण होता है। यह सतत् प्रवर्धन तापस्थायी (थर्मोस्टेबल) डीएनए पॉलिमरेज (जीवाणु, *थर्मस एक्वेटिकस* से पृथक किया गया है) द्वारा किया जाता है। उच्च तापमान द्वारा प्रेरित द्विलड़ीय डीएनए के विकृतीकरण के समय भी यह हमेशा सक्रिय बना रहता है। यदि आवश्यकता पड़े, तो अब प्रवर्धित खंड को संवाहक के साथ बांध कर आगे क्लोनिंग में प्रयोग कर सकते हैं। (चित्र 11.6)

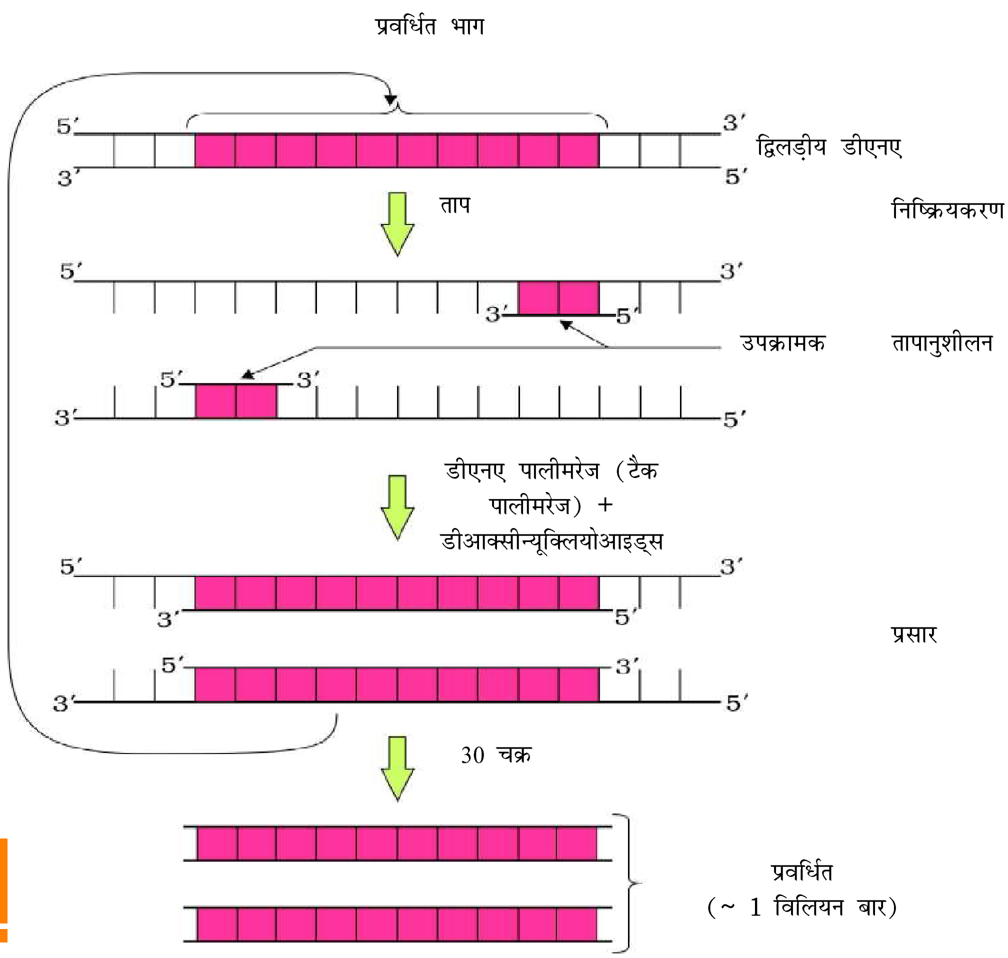

चित्र 11.6 पालिमरेज शृंखला अभिक्रिया (पीसीआर) का प्रदर्शन — प्रत्येक चक्र में तीन चरण हैं — (अ) निष्क्रियकरण (ब) उपक्रामक तापानुशीलन व (स) उपक्रामकों का विस्तार

11.3.4 पुनर्योगज डीएनए का परपोषी कोशिका/जीव में निवेशन

बँधे हुए डीएनए को आदाता कोशिका में प्रवेश कराने की अनेक विधियाँ हैं। यह कार्य जब आदाता कोशिका अपने चारों तरफ स्थित डीएनए को धारण करने में सक्षम हो जाए तब किया जा सकता है। यदि पुनर्योगज डीएनए को जिसमें प्रतिजैविक (उदाहरण-एंपिसिलिन) के प्रति प्रतिरोधी जीन स्थित होता है, ई कोलाई कोशिकाओं में स्थानांतरित किया जाए तो परपोषी कोशिकाएँ प्रतिरोधी कोशिकाओं में रूपांतरित हो जाती है। यदि रूपांतरित कोशिकाओं को युक्त ऐगार प्लेट पर फैलाया जाता है तो केवल कोशिकाएँ ही विकसित हो पाती हैं जबकि अरूपांतरित आदाता कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है। प्रतिरोधी जीन के कारण कोई भी एंपिसिलिन की उपस्थिति में रूपांतरित कोशिका का चयन कर सकता है। इस मामलें में प्रतिरोधी जीन को **वरणयोग्य चिह्नक** कहते हैं।

11.3.5 बाहरी जीन उत्पाद को प्राप्त करना

जब आप विजातीय डीएनए खंड का क्लोनिंग संवाहक में निवेश कराकर किसी भी जीवाणु, पौधा या जंतु कोशिका में स्थानांतरित करते हैं तो विजातीय डीएनए इनमें गुणित होने लगता है। लगभग सभी पुनर्योगज प्रौद्योगिकियों का अंतिम उद्देश्य वांछित प्रोटीन का उत्पादन करना ही होता है। इसके लिए पुनर्योगज डीएनए के अभिव्यक्त होने की आवश्यकता होती है। बाहरी जीन उपयुक्त परिस्थितियों में अभिव्यक्त होते हैं। बाहरी जीन की परपोषी कोशिकाओं में अभिव्यक्ति को समझने के लिए कई तकनीकी बातों को विस्तारपूर्वक जानना जरूरी है।

वांछित जीन को क्लोन करने, लक्ष्य प्रोटीन की अभिव्यक्ति को प्रेरित करने वाली परिस्थितियों को अनुकूलतम बनाने के बाद कोई भी इनका व्यापक स्तर पर उत्पादन करने के बारे में सोच सकता है। *क्या आप कोई कारण बता सकते हैं कि बड़े पैमाने पर उत्पादन क्यों आवश्यक है?* यदि कोई प्रोटीन कूटलेखन (इनकोडिंग) जीन किसी विषमजात (हेटेरोलोगस) परपोषी में अभिव्यक्त होता है तो इसे **'पुनर्योगज प्रोटीन'** कहते है। लाभकारी क्लोनित जीनों को आश्रय देने वाली कोशिकाओं का छोटे पैमाने पर प्रयोगशाला में वर्धन किया जा सकता है। संवर्धन को वांछित प्रोटीन के निष्कर्षण में प्रयोग कर सकते हैं व पृथक्करण की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करते हुए इस प्रोटीन का शोधन करते हैं। कोशिकाओं को सतत् संवर्धन तंत्र में गुणित कर सकते हैं, जिसमें उपयोग किए गए माध्यम को एक तरफ से निकालकर दूसरी तरफ से ताजा माध्यम को भरते हैं ताकि कोशिकाएँ अपने क्रियात्मक रूप से सर्वाधिक सक्रिय लॉग (एक्स्पोनोन्शियल) प्रावस्था में बनी रहें। यह संवधन विधि अधिक जैवमात्रा के उत्पादन से वांछित प्रोटीन के अधिक उत्पादन हेतु उपयोगी है।

कम आयतन संवर्धन से उत्पाद की पर्याप्त मात्रा का उत्पादन नहीं हो सकता। इन उत्पादों के अधिक मात्रा में उत्पादन हेतु **बायोरिटर** के विकास की आवश्यकता थी, जहाँ सवंर्धन का अधिक आयतन (100-1000लीटर) संशोधित किया जा सके। इस प्रकार बायोरिएक्टर एक बर्तन के समान है, जिसमें सूक्ष्मजीवों, पौधों, जंतुओं व मानव कोशिकाओं का उपयोग करते हुए कच्चे माल को जैव रूप से विशिष्ट उत्पादों व्यष्टि

एंजाइम आदि, में परिवर्तित किया जाता है। बायोरिएक्टर, वांछित उत्पाद पाने के लिए, अनुकूलतम परिस्थितियाँ उपलब्ध करता है। वृद्धि के लिए ये अनुकूलतम परिस्थितियाँ है- तापमान, ph, क्रियाधार, लवण, विटामिन, ऑक्सीजन। जो बायोरिएक्टर सामान्यतया सर्वाधिक उपयोग में लाया जाता है वह विलोडन (स्टिरिंग) प्रकार का है जिसे चित्र 11.7 में दर्शाया गया है।

विलोडित हौज रिएक्टर सामान्यतया बेलनाकार होते हैं या जिनके आधार घुमावदार होने से रिएक्टर के अंदर अंर्तवस्तु के मिश्रण में सहायता मिलती है। विलोडक बायोरिएक्टर में ऑक्सीजन उपलब्धता व उसके मिश्रण का काम करते हैं। विकल्पतः हवा बुलबले के रूप में बायोरिएक्टर में भेजी जा सकती है। यदि आप चित्र को ध्यान से देखें तो पायेंगे कि रिएक्टर में एक प्रक्षोभक तंत्र (एजिटेटर सिस्टम), ऑक्सीजन प्रदाय तंत्र, झाग नियंत्रण तंत्र, तापक्रम नियंत्रण तंत्र, पीएच नियंत्रण तंत्र व प्रतिचयन प्रद्वार लगा होता है जिससे संवर्धन की थोड़ी मात्रा समय-समय पर निकाली जा सकती है।

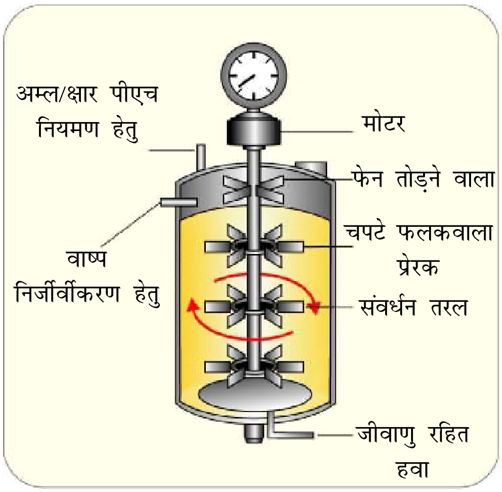

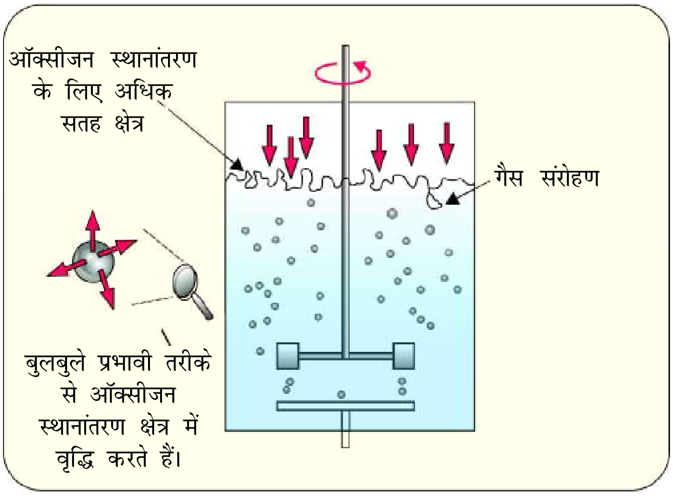

चित्र 11.7 (अ) साधारण बिलोडन हौज बायोरिएक्टर (ब) दंड विलोडक हौज बायोरिएक्टर जिसके द्वारा जीवाणु विहीन हवा के बुलबुलों का प्रवेश

11.3.6 अनुप्रवाह संसाधन

जैव संश्लेषित अवस्था के पूर्ण होने के बाद परिष्कृत तैयार होने व विपणन के लिए भेजे जाने से पहले कई प्रक्रमों से होकर गुजरता है। इन प्रक्रमों में पृथक्करण व शोधन सम्मिलित है और इसे सामूहिक रूप से अनुप्रवाह संसाधन कहते हैं। उत्पाद को उचित परिरक्षक के साथ संरूपित करते हैं। औषधि के मामले में ऐसे संरूपण (फार्मुलेशन) को चिकित्सीय परीक्षण से गुजारते हैं। प्रत्येक उत्पाद के लिए सुनिश्चित गुणवत्ता नियंत्रण परीक्षण की भी आवश्यकता होती है। अनुप्रवाह संसाधन व गुणवत्ता नियंत्रण परीक्षण प्रत्येक उत्पाद के लिए भिन्न-भिन्न होता है।

सारांश

जैव प्रौद्योगिकी जीवधारियों, कोशिकाओं व एंजाइमों का प्रयोग करते हुए उत्पादों व प्रक्रमों का व्यापक स्तर पर उत्पादन व विपणन करने से संबंधित है। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी में आनुवंशिकत: रूपांतरित जीवों का उपयोग तभी संभव हो पाया जब मनुष्य ने डीएनए के रसायन को परिवर्तित व पुनर्योगज डीएनए का निर्माण करना सीख लिया। इस प्रमुख प्रक्रम को पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी या आनुवंशिक इंजीनियरिंग कहते हैं। इस प्रक्रम में प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज, डीएनए लाइगेज, समुचित प्लाज्मिड या विषाणु संवाहक को डीएनए के पृथक करने व परपोषी जीवों में विजातीय डीएनए का स्थानांतरण, बाहरी जीन की अभिव्यक्ति, जीन उत्पाद अर्थात् सक्रिय प्रोटीन का शोधन और अंत में विपणन के लिए उपयुक्त संरूपण बनाना शामिल है। व्यापक स्तर पर उत्पादन में बायोरिएक्टर का उपयोग होता है।

अभ्यास

1. क्या आप दस पुनर्योगज प्रोटीन के बारे में बता सकते हैं जो चिकित्सीय व्यवहार के काम में लाए जाते हैं? पता लगाइये कि वे चिकित्सीय औषधि के रूप में कहाँ प्रयोग किए जाते हैं। (इंटरनेट की सहायता लें)।
2. एक सचित्र (चार्ट) (आरेखित निरूपण के साथ) बनाइए जो प्रतिबंधन एंजाइम को, (जिस क्रियाधार डीएनए पर यह कार्य करता है उसे), उन स्थलों को जहाँ यह डीएनए को काटता है व इनसे उत्पन्न उत्पाद को दर्शाता है।
3. कक्षा ग्यारहवीं में जो आप पढ़ चुके हैं उसके आधार पर क्या आप बता सकते हैं कि आणविक आकार के आधार पर एंजाइम बड़े हैं या डीएनए। आप इसके बारे में कैसे पता लगायेंगे?
4. मानव की एक कोशिका में डीएनए की मोलर सांद्रता क्या होगी? अपने अध्यापक से परामर्श लीजिए।
5. क्या सुकेंद्रकी कोशिकाओं में प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज मिलते हैं? अपने उत्तर सही सिद्ध कीजिए।
6. अच्छी हवा व मिश्रण विशेषता के अतिरिक्त की तुलना में कौन सी अन्य कंपन्न फ्लास्क सुविधाएँ हैं?
7. शिक्षक से परामर्श कर पाँच पैलिंड्रोमिक अनुप्रयास करना होगा कि क्षारक-युग्म नियमों का पालन करते हुए पैलिंड्रोमिक अनुक्रम बनाने के उदाहरण का पता लगाइए।
8. अर्धसूत्री विभाजन को ध्यान में रखते हुए क्या बता सकते हैं कि पुनर्योगज डीएनए किस अवस्था में बनते हैं?

9. क्या आप बता सकते हैं कि प्रतिवेदक (रिपोर्टर) एंजाइम को वरणयोग्य चिह्न की उपस्थिति में बाहरी डीएनए को परपोषी कोशिकाओं में स्थानांतरण के लिए मॉनिटर करने के लिए किस प्रकार उपयोग में लाया जा सकता है?

10. निम्नलिखितों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए-
 (क) प्रतिकृतीयन का उद्‌भव
 (ख) बायोरिएक्टर
 (ग) अनुप्रवाह संसाधन

11. संक्षेप में बताइए
 (क) पीसीआर
 (ख) प्रतिबंधन एंजाइम और डीएनए
 (ग) काइटिनेज

12. अपने अध्यापक से चर्चा करके पता लगाइए कि निम्नलिखित के बीच कैसे भेद करेंगे-
 (क) प्लाज्मिड डीएनए और गुणसूत्रीय डीएनए
 (ख) आरएनए और डीएनए
 (ग) एक्सोन्यूक्लिएज और एंडोन्यूक्लिएज

अध्याय 12

जैव प्रौद्योगिकी एवं उसके उपयोग

12.1 कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग

12.2 चिकित्सा में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग

12.3 पारजीवी जंतु (ट्रांसजेनिक एनीमल)

12.4 नैतिक प्रश्न

तुम पिछले अध्याय में जैव प्रौद्योगिकी जिसके बारे में पढ़ चुके हो, उसमें मुख्यतया आनुवंशिक रूप से रूपांतरित सूक्ष्मजीवों, कवक, पौधों व जंतुओं का उपयोग करते हुए जैव भैषजिक व जैविक पदार्थों का औद्योगिक स्तर पर उत्पादन किया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग चिकित्सा शास्त्र, निदानसूचक, कृषि में आनुवंशिकत: रूपांतरित फसलें, संसाधित खाद्य, जैव सुधार, अपशिष्ट प्रतिपादन व ऊर्जा उत्पादन में हो रहा है। जैव प्रौद्योगिकी के तीन विवेचनात्मक अनुसंधान क्षेत्र हैं —

(क) उन्नत जीवों जैसे-सूक्ष्मजीवों या शुद्ध एंजाइम के रूप में सर्वोत्तम उत्प्रेरक का निर्माण करना।

(ख) उत्प्रेरक के कार्य हेतु अभियांत्रिकी द्वारा सर्वोत्तम परिस्थितियों का निर्माण करना, तथा

(ग) अनुप्रवाह प्रक्रमण तकनीक का प्रोटीन/कार्बनिक यौगिक के शुद्धीकरण में उपयोग करना।

अब हम पता लगाएँगे कि मनुष्य जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग विशेषरूप से स्वास्थ्य व खाद्य उत्पादन के क्षेत्र में जीवनस्तर के सुधार में किस प्रकार से लगा हुआ है।

12.1 कृषि में जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग

खाद्य उत्पादन में वृद्धि हेतु हम तीन संभावनाओं के बारे में सोच सकते हैं-— (क) कृषि रसायन आधारित कृषि (ख) कार्बनिक कृषि और

(ग) आनुवंशिकतः निर्मित फसल आधारित कृषि। **हरित क्रांति** द्वारा खाद्य आपूर्ति में तिगुनी वृद्धि में सफलता मिलने के बावजूद मनुष्य की बढ़ती जनसंख्या का पेट भर पाना संभव नहीं है। उत्पादन में वृद्धि आंशिक रूप से उन्नत किस्मों की फसलों के उपयोग के कारण हैं जबकि इस वृद्धि में मुख्यतया उत्तम प्रबंधकीय व्यवस्था और कृषि रसायनों (खादों तथा पीडकनाशिकों) का प्रयोग एक कारण है। हालाँकि विकासशील देशों के किसानों के लिए कृषि रसायन काफी महंगे पड़ते हैं व परंपरागत प्रजनन के द्वारा निर्मित किस्मों से उत्पादन में वृद्धि संभव नहीं है। क्या ऐसा कोई वैकल्पिक रास्ता है जिसमें आनुवंशिक जानकारी का उपयोग करते हुए किसान अपने खेतों से सर्वाधिक उत्पादन ले सकेंगे? क्या ऐसा कोई तरीका है जिसके द्वारा खादों एवं रसायनों का न्यूनतम उपयोग कर उसके द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को घटा सकते हैं? आनुवंशिकतः रूपांतरित फसलों का उपयोग ही इस समस्या का हल है।

ऐसे पौधे, जीवाणु, कवक व जंतु जिनके जींस हस्तकौशल द्वारा परिवर्तित किए जा चुके हैं। **आनुवंशिकतः रूपांतरित जीव** (जेनेटिकली मोडीफाइड आर्गेनाइजेशन) कहलाते हैं। जीएमओ का व्यवहार स्थानांतरित जीन की प्रकृति, परपोषी पौधों, जंतुओं या जीवाणुओं की प्रकृति व खाद्य जाल पर निर्भर करता है। जीएम पौधों का उपयोग कई प्रकार से लाभदायक है। आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा—

- (क) अजैव प्रतिबलों (ठंडा, सूखा, लवण, ताप) के प्रति अधिक सहिष्णु फसलों का निर्माण
- (ख) रासायनिक पीड़कनाशकों पर कम निर्भरता करना (पीड़कनाशी-प्रतिरोधी फसल)
- (ग) कटाई पश्चात् होने वाले (अन्नादि) नुकसानों को कम करने में सहायक
- (घ) पौधों द्वारा खनिज उपयोग क्षमता में वृद्धि (यह शीघ्र मृदा उर्वरता समापन को रोकता है)
- (ङ) खाद्य पदार्थों के पोषणिक स्तर में वृद्धि; उदाहरणार्थ—विटामिन ए समृद्ध धान (गोल्डन राइस)

उपरोक्त उपयोगों के साथ - साथ जी एम का उपयोग तदनुकुल पौधों के निर्माण में सहायक है, जिनसे वैकल्पिक संसाधनों के रूप में उद्योगों में वसा, ईंधन व भेषजीय पदार्थों की आपूर्ति की जाती है।

कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोगों में जिनके बारे में तुम विस्तृत रूप से अध्ययन करोगे; वह पीड़क प्रतिरोधी फसलों का निर्माण है जो पीड़कनाशकों की मात्रा को कम प्रयोग में लाती है। बीटी (**Bt**) एक प्रकार का जीवविष है जो एक जीवाणु जिसे *बैसीलस थूरीनजिएंसीस* (संक्षेप में **बीटी**) कहते हैं, से निर्मित होता है। बीटी जीवविष जीन जीवाणु से क्लोनिकृत होकर पौधों में अभिव्यक्त होकर कीटों (पीड़कों) के प्रति प्रतिरोधकता पैदा करता है जिससे कीटनाशकों के उपयोग की आवश्यकता नहीं रह गई है। इस तरह से जैव-पीड़कनाशकों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ— बीटी कपास, बीटी मक्का, धान, टमाटर, आलू व सोयाबीन आदि।

बीटी कपास— *बैसीलस थूरीनजिएंसीस* की कुछ नस्लें ऐसी प्रोटीन का निर्माण करती हैं जो विशिष्ट कीटों जैसे— लीथीडोप्टेशन (तंबाकू की कलिका कीड़ा, सैनिक कीड़ा), कोलियोप्टेरान (भृंग) व डीप्टेरान (मक्खी, मच्छर) को मारने में सहायक है।

बी. थूरीनजिएंसीस अपनी वृद्धि के विशेष अवस्था में कुछ प्रोटीन रवा का निर्माण करती है। इन रवों में विषाक्त **कीटनाशक प्रोटीन** होता है। यह जीवविष बैसीलस को क्यों नहीं मारता है? वास्तव में बीटी जीव-विष प्रोटीन, प्राक्‌जीव विष निष्क्रिय रूप में होता है, ज्योंहि कीट इस निष्क्रिय जीव विष को खाता है, इसके रवे आँत में क्षारीय पी एच के कारण घुलनशील होकर सक्रिय रूप में परिवर्तन हो जाते हैं। सक्रिय जीव विष मध्य आँत के उपकलीय कोशिकाओं की सतह से बँधकर उसमें छिद्रों का निर्माण करते हैं, जिस कारण से कोशिकाएँ फूलकर फट जाती हैं और परिणामस्वरूप कीट की मृत्यु हो जाती है।

विशिष्ट बीटी जीव विष जींस *बैसीलस थुरीनजिएंसिस* से पृथक कर कई फसलों जैसे कपास में समाविष्ट किया जा चुका है। जींस का चुनाव फसल व निर्धारित कीट पर निर्भर करता है, जबकि सर्वाधिक बीटी जीव विष कीट-समूह विशिष्टता पर निर्भर करते हैं। जीव विष जिस जीन द्वारा कूटबद्ध होते हैं उसे क्राई कहते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। उदाहरणस्वरूप — जो प्रोटींस जीन *क्राई 1 एसी* व *क्राई 2 एबी* द्वारा कूटबद्ध होते हैं वे कपास के मुकुल कृमि को नियंत्रित करते हैं (चित्र 12.1) जबकि *क्राई 1 एबी* मक्का छेदक को नियंत्रित करता है।

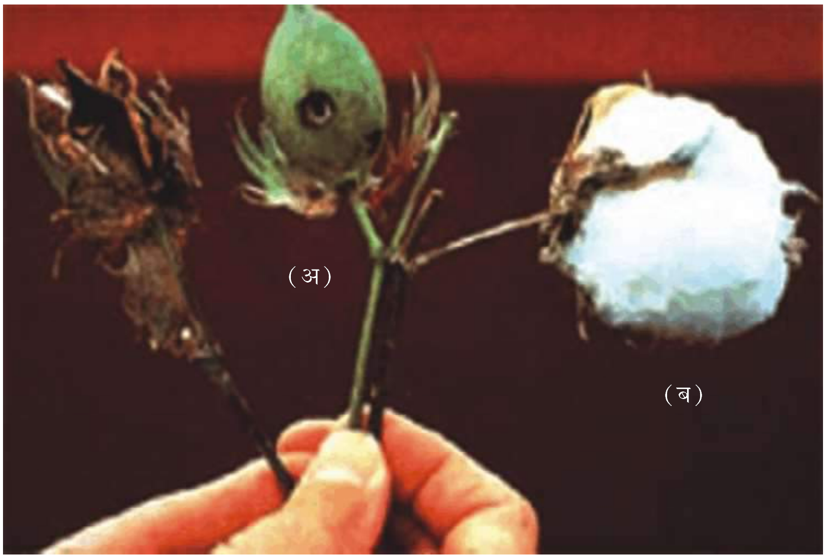

चित्र 12.1 कपास (अ) गोलक शलभ कृमि द्वारा नष्ट व (ब) पूर्णतया परिपक्व कपास गोलक

पीड़क प्रतिरोधी पौधा— विभिन्न सूत्रकृमि, मानव सहित जंतुओं व कई किस्म के पौधों पर परजीवी होते हैं। सूत्रकृमि मिल्वाडेगाइन इनकोगनीशिया तंबाकू के पौधों की जड़ों को संक्रमित कर उसकी पैदावार को काफी कम कर देता है। उपरोक्त संक्रमण को रोकने हेतु एक नवीन योजना को स्वीकार किया गया है जो आरएनए अंतरक्षेप की प्रक्रिया पर आधारित है। **आरएनए अंतरक्षेप** सभी ससीमकेंद्रकी जीनों में कोशकीय सुरक्षा की एक विधि है। इस विधि में विशिष्ट दूत आरएनए, पूरक द्विसूत्री आरएनए से वर्धित होने के पश्चात् निष्क्रिय हो जाता है जिसके फलस्वरूप दूत आरएनए के स्थानांतरण (ट्रांसलेशन)

को रोकता है। इस द्विसूत्रीय आरएनए का स्रोत, संक्रमण करने वाले विषाणु में पाए जाने वाले पूरक आरएनए जीनोम / पारांतरेक (ट्रांसपॉजान) के प्रतिकृत के उपरांत बनने वाले मध्यवर्ती आरएनए हैं।

एग्रोबैक्टिरियम संवाहकों का उपयोग कर सूत्रकृमि विशिष्ट जीनों को परपोषी पौधों में प्रवेश कराया जा चुका है (चित्र 12.2)। डीएनए का प्रवेश इस प्रकार कराया जाता है कि परपोषी कोशिकाओं में अर्थ (सैंस) व प्रति-अर्थ (ऐंटीसैंस) आरएनए का निर्माण करता है। ये दोनों आरएनए एक दूसरे के पूरक होते हैं जो द्विसूत्रीय आरएनए का निर्माण करते हैं; जिससे आरएनए अंतरक्षेप प्रारंभ होता है और इसी कारण से सूत्रकृमि के विशिष्ट दूत आरएनए निष्क्रिय हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप पारजीवी परपोषी में विशिष्ट अंतरक्षेपी आरएनए की उपस्थिति से परजीवी जीवित नहीं रह पाता है। इस प्रकार पारजीवी पौधे अपनी सुरक्षा परजीवी से करते हैं (चित्र 12.2)।

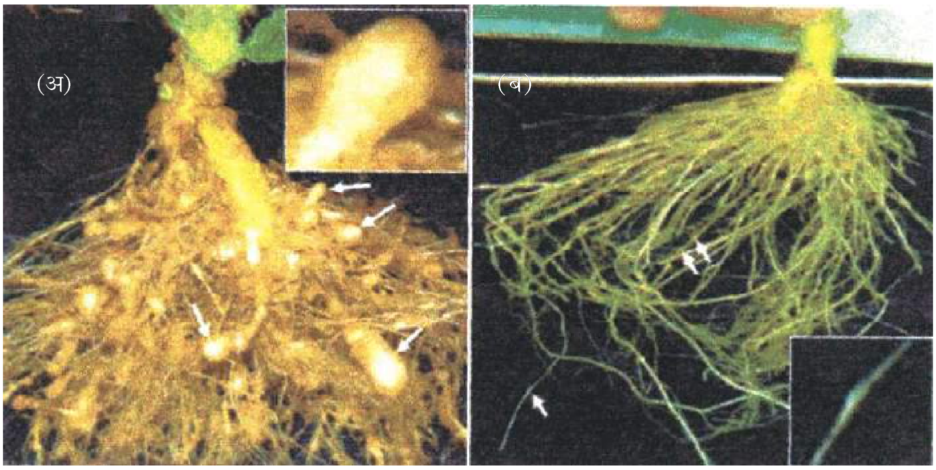

चित्र 12.2 पोषी पादप जनित ds आरएनए द्वारा सूत्रकृमि ग्रसन के विरूद्ध सुरक्षा में वृद्धि (अ) प्रारूपी नियंत्रित पादप मूलें (ब) पाँच दिनों तक जानबूझकर सूत्रकृमि द्वारा पारजीवी पादप की जड़ों का संक्रमण तथा साथ ही नवीन विधि द्वारा सुरक्षा

12.2 चिकित्सा में जैव प्रोद्यौगिकी का उपयोग

पुनर्योगज डीएनए प्रोद्यौगिकी विधियों का स्वास्थ्य सुरक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक प्रभाव डाला है; क्योंकि इसके द्वारा उत्पन्न सुरक्षित व अत्यधिक प्रभावी चिकित्सीय औषधियों का उत्पादन अधिक मात्रा में संभव है। पुनर्योगज चिकित्सीय औषधियों का अवांछित प्रतिरक्षात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि ऐसा देखा गया है कि उपरोक्त उत्पाद जो अमानवीय स्रोतों से विलगित किए गए हैं, वे अवाँछित प्रतिरक्षात्मक प्रभाव डालते हैं। वर्तमान समय में लगभग 30 पुनर्योगज चिकित्सीय औषधियाँ विश्व में मनुष्य के प्रयोग हेतु स्वीकृत हो चुकी हैं। वर्तमान में; इनमें से 12 भारत में विपणित हो रही हैं।

12.2.1 आनुवंशिकतः निर्मित इंसुलीन

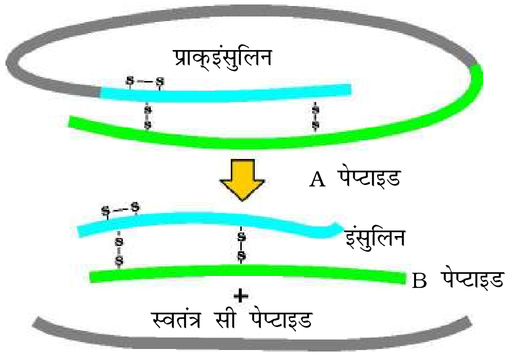

चित्र 12.3 प्राक-इंसुलिन का सी-पेप्टाइड के अलग होने के बाद इंसुलिन में परिपक्वता

वयस्कों में होने वाले मधुमेह का नियंत्रण निश्चित समय अंतराल पर इंसुलीन लेने से ही संभव है। *मानव इंसुलीन पर्याप्त उपलब्ध न होने पर मधुमेह रोगी क्या करेंगे?* उस पर विचार करने पर हम इस बात को स्वीकार करेंगे कि हमें अन्य जानवरों से इंसुलीन वियुक्त कर उपयोग में लाना होगा। *क्या अन्य जंतुओं से वियुक्त इंसुलीन मानव शरीर में भी प्रभावी है और उसका मानव शरीर के प्रतिरक्षा अनुक्रिया पर कोई हानिकारक प्रभाव तो नहीं पड़ता है?* तुम कल्पना करो कि यदि कोई जीवाणु मानव इंसुलीन बना सकता है तो निश्चय ही पूरी प्रक्रिया सरल हो जाएगी। तुम आसानी से ऐसे जीवाणु को अधिक मात्रा में विकसित कर जितना चाहे अपनी आवश्यकता के अनुसार इंसुलीन बना सकते हो। *सोचो क्या इंसुलीन मधुमेही लोगों को मुख से दिया जा सकता है कि नहीं। क्यों?*

मधुमेह रोगियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाला इंसुलीन जानवरों व सुअरों को मारकर उनके अग्नाश्य से निकाला जाता था। जानवरों द्वारा प्राप्त इंसुलीन से कुछ रोगियों में प्रत्यूर्जा (एलर्जी) या बाह्य प्रोटीन के प्रति दूसरे तरह की प्रतिक्रिया होने लगती थी। इंसुलीन दो छोटी पालीपेप्टाइड शृंखलाओं का बना होता है, शृंखला 'ए' व शृंखला 'बी' जो आपस में डाईसल्फाइड बंधों द्वारा जुड़ी होती हैं (चित्र 12.3)। मानव सहित स्तनधारियों में इंसुलिन प्राक्-हार्मोन (प्राक् -एंजाइम की तरह प्राक् -हार्मोन को पूर्ण परिपक्व व क्रियाशील हार्मोन बनने के पहले संसाधित होने की आवश्यकता होती है) संश्लेषित होता है; जिसमें एक अतिरिक्त फैलाव होता है जिसे **पेप्टाइड 'सी'** कहते हैं। यह 'सी' पेप्टाइड परिपक्व इंसुलिन में नहीं होता, जो परिपक्वता के दौरान इंसुलिन से अलग हो जाता है। आर डीएनए तकनीकियों का प्रयोग करते हुए इंसुलिन के उत्पादन में मुख्य चुनौती यह है कि इंसुलिन को एकत्रित कर परिपक्व रूप में तैयार किया जाए। 1983 में एली लिली नामक एक अमेरिकी कंपनी ने दो डीएनए अनुक्रमों को तैयार किया जो मानव इंसुलिन की शृंखला ए और बी के अनुरूप होती हैं जिसे इ. कोलाई के प्लाज्मिड में प्रवेश कराकर इंसुलिन शृंखलाओं का उत्पादन किया। इन अलग-अलग निर्मित शृंखलाओं ए और बी को निकालकर डाईसल्फाइड बंध बनाकर आपस में संयोजित कर मानव इंसुलिन का निर्माण किया गया।

12.2.2 जीन चिकित्सा

यदि एक व्यक्ति आनुवंशिक रोग के साथ पैदा हुआ है, तो क्या इस रोग के उपचार हेतु कोई चिकित्सा व्यवस्था है? जीन चिकित्सा ऐसा ही एक प्रयास है। जीन चिकित्सा में उन विधियों का सहयोग लेते हैं जिनके द्वारा किसी बच्चे या भ्रूण में चिह्नित किए गए जीन दोषों का सुधार किया जाता है। उसमें रोग के उपचार हेतु जीनों को व्यक्ति की कोशिकाओं या ऊतकों में प्रवेश कराया जाता है। आनुवंशिक दोष वाली कोशिकाओं के

उपचार हेतु सामान्य जीन को व्यक्ति या भ्रूण में स्थानांतरित करते हैं जो निष्क्रिय जीन की क्षतिपूर्ति कर उसके कार्यों को संपन्न करते हैं।

जीन चिकित्सा का पहले पहल प्रयोग वर्ष 1990 में एक चार वर्षीय लड़की में एडीनोसीन डिएमीनेज (एडीए) की कमी को दूर करने के लिए किया गया था। यह एंजाइम प्रतिरक्षातंत्र के कार्य के लिए अति आवश्यक होता है। उपरोक्त समस्या जो एंजाइम एडीनोसीन डिएमीनेज के लिए जिम्मेदार है जो इसके लोप होने के कारण होता है। कुछ बच्चों में एडीए की कमी का उपचार अस्थिमज्जा के प्रत्यारोपण से होता है। जबकि दूसरों में एंजाइम प्रतिस्थापन चिकित्सा द्वारा उपचार किया जाता है; जिसमें सुई द्वारा रोगी को सक्रिय एडीए दिया जाता है। उपरोक्त दोनों विधियों में यह कमी है कि ये पूर्णतया रोगनाशक नहीं है। जीन चिकित्सा में सर्वप्रथम रोगी के रक्त से लसीकाणु को निकालकर शरीर से बाहर संवर्धन किया जाता है। सक्रिय एडीए का सी डीएनए (पश्च विषाणु संवाहक का प्रयोगकर) लसीकाणु में प्रवेश कराकर अंत में रोगी के शरीर में वापस कर दिया जाता है। ये कोशिकाएँ मृतप्राय होती हैं; इसलिए आनुवंशिक निर्मित लसीकाणुओं को समय-समय पर रोगी के शरीर से अलग करने की आवश्यकता होती है। यदि मज्जा कोशिकाओं से विलगित अच्छे जीनों को प्रारंभिक भ्रूणीय अवस्था की कोशिकाओं से उत्पादित एडीए में प्रवेश करा दिए जाएँ तो यह एक स्थायी उपचार हो सकता है।

12.2.3 आणविक निदान

आप जानते हैं कि रोग के प्रभावी उपचार के लिए उसकी प्रारंभिक पहचान व उसके रोग क्रिया विज्ञान को समझना अति आवश्यक है। उपचार की परंपरागत विधियों (सीरम व मूत्र विश्लेषण आदि) का प्रयोग करते हुए रोग का प्रारंभ में पता लगाना संभव नहीं है। पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी, पॉलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया व एंजाइम सहलग्न प्रतिरक्षा शोषक आमापन (एलाइजा) कुछ ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा रोग की प्रारंभिक पहचान की जा सकती है।

रोग जनक (जीवाणु, विषाणु आदि) की उपस्थिति का सामान्यतया तब पता चलता है जब उसके द्वारा उत्पन्न रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। उस समय तक रोगजनक की संख्या शरीर में पहले से काफी अधिक हो चुकी होती है। जब बहुत कम संख्या में जीवाणु या विषाणु (उस समय जब रोग के लक्षण स्पष्ट दिखाई नहीं देते) हो तब उनकी पहचान पीसीआर द्वारा उनके न्यूक्लिक अम्ल के प्रवर्धन (एंप्लीफिकेशन) द्वारा कर सकते हैं। *क्या तुम बता सकते हो कि पीसीआर द्वारा डीएनए की बहुत कम मात्रा की पहचान कैसे की जाती है?* संदेहात्मक एड्स रोगियों में एच आइ वी की पहचान हेतु पीसीआर आजकल सामान्यतया उपयोग में लाया जा रहा है। उसका उपयोग संदेहात्मक कैंसर रोगियों के जीन में होने वाले उत्परिवर्तनों को पता लगाने में भी किया जा रहा है। यह एक उपयोगी तकनीकी है जिसके द्वारा बहुत सारी दूसरे आनुवंशिक दोषों की पहचान की जा सकती है।

डीएनए या आरएनए की एकल श्रृंखला से एक विकिरण सक्रिय अणु (संपरीक्षित्र) जुड़कर कोशिकाओं के क्लोन में अपने पूरक डीएनए से संकरित होते हैं, जिसे बाद में

स्वविकिरणी चित्रण (आटोरेडियोग्राफी) द्वारा पहचानते हैं। क्लोन जिसमें उत्परिवर्तित जीन मिलते हैं। छायाचित्र पटल (फोटोग्रैफिक फिल्म) पर दिखाई नहीं देते हैं; क्योंकि संपरीक्षित्र (प्रोब) व उत्परिवर्तित जीन आपस में एक दूसरे के पूरक नहीं होते हैं।

एंजाइम सहलग्न प्रतिरक्षा शोषक आमापन (एलाइजा) प्रतिजन- प्रतिरक्षी पारस्परिक क्रिया के सिद्धांत पर कार्य करता है। रोग जनकों के द्वारा उत्पन्न संक्रमण की पहचान प्रतिजनों (प्रोटीनजन, ग्लाइकोप्रोटींस आदि) की उपस्थिति या रोग जनकों के विरूद्ध संश्लेषित प्रतिरक्षी की पहचान के आधार पर की जाती है।

12.3 पारजीवी जंतु (ट्रांसजेनिक एनिमल्स)

ऐसे जंतुओं जिनके डीएनए में परिचालन द्वारा एक अतिरिक्त (बाहरी) जीन व्यवस्थित होता है जो अपना लक्षण व्यक्त करता है उसे **पारजीवी जंतु** कहते हैं। पारजीवी चूहे, खरगोश, सूअर, भेड़, गाय व मछलियाँ आदि पैदा हो चुके हैं उसके बावजूद उपस्थित पारजीवी जंतुओं में 95 प्रतिशत से अधिक चूहे हैं। उस तरह के जंतुओं का उत्पादन क्यों किया जाता है? इस तरह के परिवर्तन से मानव को क्या लाभ है? अब हम कुछ सामान्य कारणों का पता करेंगे—

(क) ***सामान्य शरीर क्रिया व विकास*** — पारजीवी जंतुओं का निर्माण विशेषरूप से इस प्रकार किया जाता है जिनमें जीनों के नियंत्रण व इनका शरीर के विकास व सामान्य कार्यों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है; उदाहरणार्थ- विकास में भागीदार जटिल कारकों जैसे-इंसुलिन की तरह विकास कारक का अध्ययन। दूसरी जाति (स्पीशीज़) के जींस को प्रवेश कराने के उपरांत उपरोक्त कारकों के निर्माण में होने वाले परिवर्तनों से होने वाले जैविक प्रभाव का अध्ययन तथा कारकों की शरीर में जैविक भूमिका के बारे में सूचना मिलती है।

(ख) ***रोगों का अध्ययन*** — अनेकों पारजीवी जंतु इस प्रकार निर्मित किए जाते हैं जिनसे रोग के विकास में जीन की भूमिका क्या होती है? यह विशिष्ट रूप से निर्मित है जो मानव रोगों के लिए नमूने के रूप में प्रयोग किए जाते हैं ताकि रोगों के नए उपचारों का अध्ययन हो सके। वर्तमान समय में मानव रोगों जैसे-कैंसर, पुटीय रेशामयता (सिस्टीक फाइब्रोसिस), रूमेटवाएड संधिशोथ व एल्जिमर हेतु पारजीवी नमूने उपलब्ध हैं।

(ग) ***जैविक उत्पाद*** — कुछ मानव रोगों के उपचार के लिए औषधि की आवश्यकता होती है जो जैविक उत्पाद से बनी होती है। ऐसे उत्पादों को बनाना अक्सर बहुत महँगा होता है। पारजीवी जंतु जो उपयोगी जैविक उत्पाद का निर्माण करते हैं उनमें डीएनए के भाग (जीनों) को प्रवेश कराते हैं जो विशेष उत्पाद के निर्माण में भाग लेते हैं। उदाहरण-मानव प्रोटीन (अल्फा-1 एंटीट्रिप्सीन) का उपयोग इंफासीमा के निदान में होता है। ठीक उसी तरह का प्रयास फिनाइल कीटोनूरिया (पीकेयू) व पुटीय रेशामयता के निदान हेतु किया गया है। वर्ष 1977 में सर्वप्रथम पारजीवी गाय 'रोजी' मानव प्रोटीन संपन्न दुग्ध (2.4 ग्राम

प्रति लीटर) प्राप्त किया गया। इस दूध में मानव अल्फा-लेक्टएल्बुमिन मिलता है जो मानव शिशु हेतु अत्यधिक संतुलित पोषक तत्त्व है जो साधारण गाय के दूध में नहीं मिलता है।

(घ) ***टीका सुरक्षा*** — टीकों का मानव पर प्रयोग करने से पहले टीके की सुरक्षा जाँच के लिए पारजीवी चूहों को विकसित किया गया है। पोलियो टीका की सुरक्षा जाँच के लिए पारजीवी चूहों का उपयोग किया जा चुका है। यदि उपरोक्त प्रयोग सफल व विश्वसनीय पाए गए तो टीका सुरक्षा जाँच के लिए बंदर के स्थान पर पारजीवी चूहों का प्रयोग किया जा सकेगा।

(ङ) ***रासायनिक सुरक्षा परीक्षण*** — यह आविषालुता सुरक्षा परीक्षण कहलाता है। यह वही विधि है जो औषधि आविषालुता परीक्षण हेतु प्रयोग में लाई जाती है। पारजीवी जंतुओं में मिलने वाले कुछ जीन इसे आविषालु पदार्थों के प्रति अतिसंवेदनशील बनाते हैं जबकि अपारजीवी जंतुओं में ऐसा नहीं है। पारजीवी जंतुओं को आविषालु पदार्थों के संपर्क में लाने के बाद पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। उपरोक्त जंतुओं में आविषालुता परीक्षण करने से कम समय में परिणाम प्राप्त हो जाता है।

12.4 नैतिक मुद्दे

माजव जाति द्वारा अन्य जीवधारियों से हितसाधन बिना विनियमों के और अधिक नहीं किया जा सकता है। सभी मानवीय क्रियाकलापों के लिए जो जीवधारियों के लिए असुरक्षात्मक या सहायक हो उनमें आचरण की परख के लिए कुछ नैतिक मानदंडों की आवश्यकता है।

ऐसे मुद्दों में नैतिकता से इनमें जैववैज्ञानिक महत्त्व भी है। जीवों के आनुवंशिक रूपांतरण के तब अप्रत्याशित परिणाम निकल सकते हैं जब ऐसे जीवों का पारिस्थितिक तंत्र में सन्निविष्ट कराया जाए।

इसीलिए, भारत सरकार ने ऐसे संगठनों को स्थापित किया है जैसे कि जी ई ए सी (जेनेटिक इंजीनयरिंग एप्रवल कमेटी अर्थात् आनुवंशिक अभियांत्रिकी संस्तुति समिति); जो कि जी एम अनुसंधान संबंधी कार्यों की वैधानिकता तथा जन सेवाओं के लिए जी एम जीवों के सन्निवेश की सुरक्षा आदि के बारे में निर्णय लेगी।

जन सेवा (जैसे कि आहार एवं चिकित्सा स्रोतों हेतु) में जीवों के रूपांतरण/उपयोगिता जो इनके जीवों के लिए अनुमत एकस्व की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

जनमानस में इस बात को लेकर आक्रोश है कि कुछ कंपनियाँ आनुवंशिक पदार्थों, पौधों व अन्य जैविक संसाधनों का उपयोग कर, बनने वाले उत्पाद व तकनीकी के लिए एकस्व (पेटेंट) प्राप्त कर रहे हैं जबकि यह बहुत समय पहले से विकसित व पहचानी जा चुकी है और किसान तथा विशेष क्षेत्र या देश के लोगों द्वारा इनका उपयोग किया जा रहा है।

धान एक महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न है जिसके बारे में हजारों वर्ष पूर्व एशिया के कृषि के इतिहास में वर्णन मिलता है। एक अनुमान के अनुसार केवल भारत में धान की लगभग 2 लाख किस्में मिलती हैं। भारत में धान की जो विविधता है, वह विश्व की सर्वाधिक

विविधताओं में एक है। बासमती धान अपनी सुगंध व स्वाद के लिए मशहूर है और इसकी 27 पहचानी गयी किस्में भारत में उगायी जाती हैं। पुराने ग्रंथों, लोकसाहित्य व कविताओं में बासमती का वर्णन मिलता है, जिससे यह पता चलता है कि यह कई सौ वर्ष पहले से उगाया जाता रहा है। वर्ष 1977 में एक अमरीकी कंपनी ने बासमती धान पर अमेरिकन एकस्व व ट्रेडमार्क कार्यालय द्वारा एकस्व अधिकार प्राप्त कर लिया था। इससे कंपनी बासमती की नई किस्मों को अमेरिका व विदेशों में बेच सकती है। बासमती की यह नयी किस्म वास्तव में भारतीय किसानों की किस्मों से विकसित की गयी थी। भारतीय बासमती को अर्द्ध बौनी किस्मों से संकरण कराकर नयी खोज या एक नयी उपलब्धि का दावा किया था। एकाधिकार के लागू होने के बाद इस एकाधिकार के तहत अन्य लोगों द्वारा बासमती का विक्रय प्रतिबंधित हो सकता था।

मल्टीनेशनल कंपनियों व दूसरे संगठनों द्वारा किसी राष्ट्र या उससे संबंधित लोगों से बिना व्यवस्थित अनुमोदन व क्षतिपूरक भुगतान के जैव संसाधनों का उपयोग करना **बायोपाइरेसी** कहलाता है।

बहुत सारे औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न हैं लेकिन उनके पास जैव विविधता एवं परंपरागत ज्ञान की कमी है। इसके विपरीत विकसित व अविकसित विश्व जैव विविधता व जैव संसाधनों से संबंधित परंपरागत ज्ञान से संपन्न है। जैव-संसाधनों से संबंधित परंपरागत ज्ञान का उपयोग आधुनिक उपयोगों में किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप इनके व्यापारीकरण के दौरान, समय, शक्ति व खर्च को बचाया जा सकता है।

विकसित व विकासशील राष्ट्रों के बीच अन्याय, अपर्याप्त क्षतिपूर्ति व लाभों की भागीदारी के प्रति भावना विकसित हो रही है। इसके कारण कुछ राष्ट्रों ने अपने जैव संसाधनों व परंपरागत ज्ञान का बिना पूर्व अनुमति के उपयोग पर प्रतिबंध के लिए नियमों को बना रहे हैं।

भारतीय संसद ने हाल ही में भारतीय एकस्व बिल (इंडियन पेटेंट बिल) में दूसरा संशोधन पारित किया है जो ऐसे मुद्दों को ध्यानार्थ लेगा, जिसके अंतर्गत एकस्व नियम संबंधी आपात्कालिक प्रावधान तथा अनुसंधान एवं विकासीय प्रयास शामिल हैं।

सारांश

सूक्ष्मजीवों, पौधों, जंतुओं व अनेक उपापचयी कार्यप्रणाली का उपयोग करते हुए जैव प्रौद्योगिकी द्वारा मनुष्य के लिए कई उपयोगी पदार्थों का निर्माण हो चुका है। पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी ने ऐसे सूक्ष्मजीवों, पौधों व जंतुओं का निर्माण संभव कर दिया है जिनमें अभूतपूर्व क्षमता निहित है। आनुवंशिकत: रूपांतरित जीवों का निर्माण एक या एक से अधिक जीन का, एक जीव से दूसरे जीव में स्थानांतरण की प्राकृतिक विधि के अतिरिक्त पुनर्योगज डी एन ए प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए किया गया है।

जीएम पौधों का उपयोग फसल उत्पादन बढ़ाने, पश्च फसल उत्पाद नुकसान में कमी व फसलों का प्रतिबंधों के प्रति अधिक सहनशील बनाने में अत्यन्त उपयोगी है। ऐसे बहुत

जीएम फसल पौधे हैं जिनका खाद्य पौष्टिक स्तर काफी उन्नत है व उन (पीड़क-प्रतिरोधी फसलों) की रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता काफी कम है ।

पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी प्रक्रियाओं का स्वास्थ्य सुरक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है; क्योंकि इनके द्वारा सुरक्षित व अत्यधिक प्रभावशाली औषधियों का निर्माण संभव है। पुनर्योगज चिकित्सीय औषधियाँ मनुष्य के प्रोटीन के समतुल्य हैं। इस कारण से इनका प्रतिरक्षात्मक अवांछित प्रभाव नहीं पड़ता है व इनसे संक्रमण के खतरे भी नहीं होते हैं जैसा कि अमानवीय स्रोतों से विलगित इस प्रकार के पदार्थों से होता है। जीवाणु में रचित मानव इंसुलिन जो संरचनात्मक प्राकृतिक अणु से पूर्णतया समान होता है।

पारजीवी जंतु मानव रोगों जैसे- कैंसर, पुटीय रेशामयता, रूमेट्वाएड संधिशोथ व एल्जीमर के लिए नमूने के रूप में उपयोग किए जाते हैं, जिससे हमें रोग के विकास में जीन की भूमिका को पता लगाने में सुविधा होती है।

जीन चिकित्सा द्वारा खासतौर से आनुवंशिक रोगों को दूर करने के लिए व्यक्ति विशेष की कोशिकाओं व ऊतकों में जीन को प्रवेश कराते हैं। इसके कारण खराब उत्परिवर्तित विकल्पी के स्थान पर सक्रिय विकल्पी या जीन टारगेटिंग के द्वारा उपचार होता है, जिनमें जीन प्रवर्धन शामिल हैं। विषाणु जो अपने परपोषी पर आक्रमण कर अपने विभाजन चक्र के लिए अपना आनुवंशिक पदार्थ परपोषी की कोशिकाओं में प्रवेश करता है। इसे संवाहक के रूप में प्रयोग कर स्वस्थ जीन या नए जीन के भाग को स्थानांतरित किया जा सकता है।

सूक्ष्मजीवों, पौधों व जंतुओं के व्यवहार के प्रति वर्तमान दिलचस्पी ने गंभीर नैतिक प्रश्न खड़े कर दिए हैं। भारत सरकार ने इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाए हैं।

अभ्यास

1. बीटी (Bt) आविष के रवे कुछ जीवाणुओं द्वारा बनाए जाते हैं लेकिन जीवाणु स्वयं को नहीं मारते हैं; क्योंकि—

   (क) जीवाणु आविष के प्रति प्रतिरोधी है।

   (ख) आविष अपरिपक्व है।

   (ग) आविष निष्क्रिय होता है।

   (घ) आविष जीवाणु की विशेष थैली में मिलता है।

2. पारजीवी जीवाणु क्या है? किसी एक उदाहरण द्वारा सचित्र वर्णन करो।
3. आनुवंशिक रूपांतरित फसलों के उत्पादन के लाभ व हानि का तुलनात्मक विभेद किजिए।
4. क्राई प्रोटींस क्या है? उस जीव का नाम बताओ जो इसे पैदा करता है। मनुष्य इस प्रोटीन को अपने फायदे के लिए कैसे उपयोग में लाता है।

5. जीन चिकित्सा क्या है? एडीनोसीन डिएमीनेज (ए डी ए) की कमी का उदाहरण देते हुए इसका सचित्र वर्णन करें।
6. ई.कोलाई जैसे जीवाणु में मानव जीन की क्लोनिंग एवं अभिव्यक्ति के प्रायोगिक चरणों का आरेखीय निरूपण प्रस्तुत करें।
7. तेल के रसायन शास्त्र तथा आरडीएनए जिसके बारे में आपको जितना भी ज्ञान प्राप्त है, उसमें आधार बीजों तेल हाइड्रोकार्बन हटाने की कोई एक विधि सुझाओ।
8. इंटरनेट से पता लगाओ कि गोल्डन राइस (गोल्डन धान) क्या है?
9. क्या हमारे रक्त में प्रोटीओजेज तथा न्यूक्लीऐजिज हैं?
10. इंटरनेट से पता लगाओ कि मुखीय सक्रिय औषध प्रोटीन को किस प्रकार बनाएँगे। इस कार्य में आने वाली मुख्य समस्याओं का वर्णन करें।

इकाई दस
पारिस्थितिकी

अध्याय 13
जीव और समष्टियाँ

अध्याय 14
पारितंत्र

अध्याय 15
जैव विविधता एवं संरक्षण

अध्याय 16
पर्यावरण के मुद्दे

विविधता ही जीवित जीवों का केवल लक्षण नहीं है; बल्कि जीव विज्ञान पाठ्यपुस्तक का भी अंश है। जीव विज्ञान का प्रस्तुतीकरण या तो वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान तथा सूक्ष्म जीव विज्ञान अथवा चिर प्रतिष्ठित तथा आधुनिक रूप में किया गया है। इसका पिछला भाग जीव विज्ञान के आणविक पहलुओं की प्रियोक्ति (युफ्रिमज़्म) है। भाग्यवश हमारे पास बहुत से सूत्र हैं, जिनका प्रयोग हम जीव-विज्ञानीय सूचना को एक से सिद्धांत के अनुरूप विभिन्न क्षेत्रों में बुनते हैं। पारिस्थितिकी भी एक ऐसा ही सूत्र है जो जीव विज्ञान को समग्रात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है। जीव विज्ञान संबंधी ज्ञान का सार यह है कि जीव व्यष्टि के रूप में किस प्रकार रहते हैं, अन्य जीवों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं तथा समूह के रूप में इनका भौतिक वास किस प्रकार का है। यह किस प्रकार संगठित होकर समष्टि, सामुदायिक पारिस्थितिक तंत्र; यहाँ तक कि संपूर्ण जीव मंडल का निर्माण करते हैं, इन सभी के बारे में पारिस्थितिकी हमें ज्ञान प्राप्त कराती है। इसका विशेष पहलू मानवजनिक पर्यावरणीय विघटन तथा इससे उत्पन्न सामाजिक, राजनैतिक मामलों का अध्ययन कराना है। इस इकाई में उपर्युक्त पहलुओं पर विशेष ध्यान देते हुए वर्णन किया गया है।

रामदेव मिश्रा
(1908-1998)

भारतवर्ष में रामदेव मिश्रा पारिस्थितिकी के जनक के रूप में जाने जाते हैं। इनका जन्म 26 अगस्त 1908 में हुआ था। इन्होंने यूनाइटेड किंगडम में लीड्स विश्वविद्यालय से प्रोफेसर डब्ल्यू एच पीयरसाल, एफ आर एस के आधीन वर्ष 1937 में पारिस्थितिकी में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि ग्रहण की। इन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के वनस्पति विभाग में पारिस्थितिकी विषय में शिक्षण तथा अनुसंधान के विभाग की स्थापना की। इनके अनुसंधान ने उष्णकटिबंधी समुदायों तथा उनके अनुक्रमण-पादप समष्टि की पर्यावरणीय अनुक्रिया तथा उष्णकटिबंधीय वन में पोषक चक्रण तथा उत्पादनशीलता और चारागाह पारिस्थितिक तंत्र आदि विषयों पर ज्ञान की आधार शिला रखी। मिश्रा जी ने भारतवर्ष में पारिस्थितिकी पर प्रथम स्नात्कोत्तर पाठयक्रम की शुरुआत की। इनके शिष्यत्व में रहकर 50 से भी अधिक विद्यार्थियों ने पीएच डी की उपाधि प्राप्त की और उन्होंने देश के अन्य विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधान संस्थानों में जाकर पारिस्थितिकी शिक्षण एवं अनुसंधान का सूत्रपात किया। इन्हें इंडियन नेशनल साइंस ऐकेडमी तथा वर्ल्ड ऐकेडमी ऑफ आर्ट्स एंड साइंस ने फैलोशिप से तथा पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के लिए, संजय गांधी जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन्हीं के प्रयासों से, भारत सरकार ने नेशनल कमेटी फार इनवॉयरमेंटल प्लानिंग तथा कोऑरडिनेशन (1972) की स्थापना की। बाद में जिसने पर्यावरण तथा वन मंत्रालय को स्थापित (1984) करने का मार्ग प्रशस्त किया।

अध्याय 13

जीव और समष्टियाँ

13.1 जीव और इसका पर्यावरण

13.2 समष्टियाँ

हमारे जैविक विश्व में लुभावनी विविधता और आश्चर्यजनक जटिलता है। हम जीव विज्ञानीय संगठन के विभिन्न स्तरों पर अन्वेषी प्रक्रमों से इसकी जटिलता को समझने का प्रयास कर सकते हैं। ये जीव विज्ञानीय संगठन स्तर हैं— बृहतअणु, कोशिकाएँ, ऊतक, अंग, व्यष्टि जीव, समष्टियाँ, समुदाय तथा पारितंत्र और जीवोम। इस संगठन के किसी भी स्तर पर हमारे मन में दो प्रकार के प्रश्न उठ सकते हैं— उदाहरण के लिए जब हम बाग में सुबह बुलबुल को गाते सुनते हैं तो प्रश्न उठता है 'पक्षी कैसे गाता है?' या 'पक्षी क्यों गाता है?' 'कैसे प्रकार' के प्रश्नों में प्रक्रम के पीछे **क्रियाविधि** जानने की जिज्ञासा है जबकि 'क्यों प्रकार' के प्रश्नों में प्रक्रम का **महत्त्व** तलाशा जाता है। इस उदाहरण में पहले प्रश्न का उत्तर पक्षी में वाक् यंत्र और कंपमान अस्थि का प्रचालन हो सकता है जबकि दूसरे प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रजनन ऋतु के दौरान पक्षी को अपने साथी से बात करने की आवश्यकता हो सकती है। जब आप अपने चारों ओर प्रकृति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखेंगे तो आपके मन में निश्चित रूप से दोनों प्रकार के अनेक दिलचस्प प्रश्न उठेंगे— *रात को खिलने वाले फूल आमतौर पर सफेद क्यों होते हैं? भ्रमर को कैसे पता चलता है कि किस फूल में मकरंद है? कैक्टस में इतने सारे काँटे क्यों होते हैं?* चूज़े कैसे अपनी *माँ* को पहचान लेते हैं? आदि-आदि।

आप पिछली कक्षाओं से सीख चुके हैं कि पारिस्थितिकी ऐसा विषय है जिसमें जीवों के बीच या जीवीय तथा भौतिक (अजीवीय/अबायोटिक) पर्यावरण के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

मूलरूप से पारिस्थितिकी जीवीय संगठन के चार स्तरों से संबंधित है- जीव, समष्टियाँ, समुदाय और जीवोम। इस अध्याय में हम पारिस्थितिकी के जैविक और समष्टि स्तरों के बारे में अध्ययन करेंगे।

13.1 जीव और इसका पर्यावरण

जैविक स्तर पर पारिस्थितिकी मूलरूप से कायिकीय पारिस्थितिकी है जिसमें विभिन्न जीव न केवल जीवित रहने बल्कि जनन के संदर्भ में अपने पर्यावरणों के प्रति अनुकूलित हो जाते हैं। आपने पहले की कक्षाओं में पढ़ा होगा कि पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूर्णन, इसके अक्ष का झुकाव तापमान की तीव्रता और अवधि किस प्रकार वार्षिक परिवर्तनों का कारण बनता है जिसके फलस्वरूप भिन्न ऋतुएँ बनती हैं। ये परिवर्तन और वर्षण मिलकर

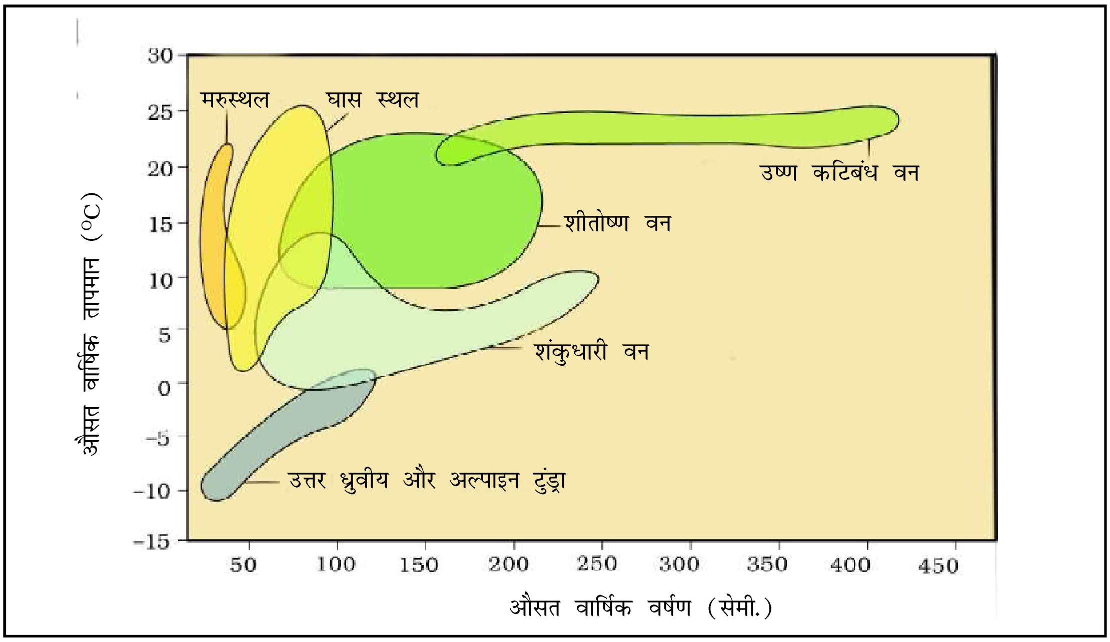

चित्र 13.1 वार्षिक तापमान और वर्षण के संदर्भ में जीवोम का वितरण

प्रमुख जीवोम का निर्माण करते हैं जैसे कि मरुस्थल, वर्षा वन और टुंड्रा (चित्र 13.1)। (बरसात या वर्षण में वर्षा और हिम दोनों शामिल हैं।) प्रत्येक जीवोम के अंदर ही क्षेत्रीय और स्थलीय विभिन्नताओं के कारण आवासों में व्यापक विविधता है। भारत के प्रमुख जीवोम चित्र 13.2 में दिखाए गए हैं। पृथ्वीग्रह पर जीवन न केवल थोड़े से अनुकूल आवासों में ही है बल्कि चरम और कठोर आवासों में भी है जैसे कि झुलसते राजस्थानी मरुस्थल, निरंतर वर्षा से भीगे मेघालय के वन, गहरे महासागर की खाइयाँ, वेगवती

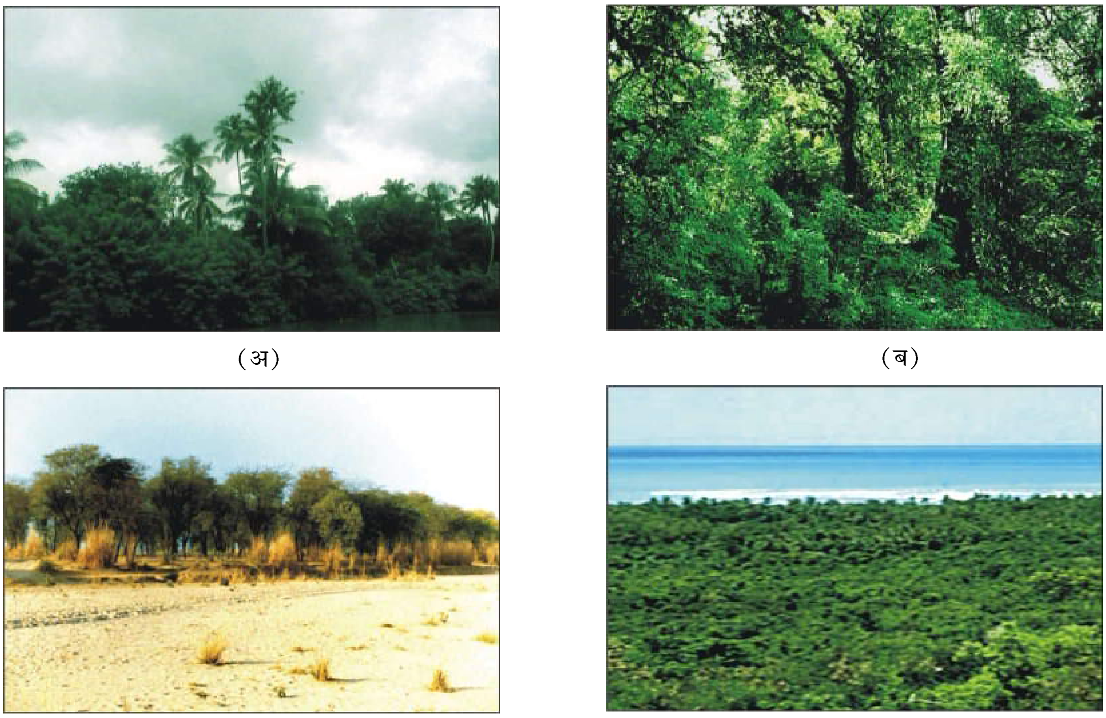

(अ) (ब) (स) (द)

चित्र 13.2 भारतवर्ष के प्रमुख जीवोम (अ) उष्ण कटिबंधीय-वर्षा वन (ब) पर्णपाती वन (स) मरुस्थल (द) समुद्र तट

सरिताएँ, ध्रुवीय क्षेत्रों की स्थायी तुषार भूमि, ऊँचे पर्वत शिखर, गरम झरने और दुर्गंधयुक्त कंपोस्ट गर्त आदि कुछ नाम हैं। यहाँ तक कि हमारी आँत भी सूक्ष्मजीवों की हजारों जातियों का बेजोड़ आवास है।

विभिन्न आवासों की भौतिक और रासायनिक स्थितियों में इतनी अधिक विविधता के मुख्य तत्त्व क्या हैं? सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व तापमान, जल, प्रकाश और मृदा हैं। हमें यह याद रखना जरूरी है कि भौतिक-रासायनिक (अजीवीय या अजैव) घटक अपने आप में पूरी तरह से किसी जीव के आवास की विशेषता नहीं बताते। आवास में जीवीय (बायोटिक) घटक भी शामिल हैं जैसे कि रोगजनक (पैथोजन), परजीवी, परभक्षी और जीव के वे स्पर्धी जिनके साथ वह लगातार पारस्परिक-क्रिया करता है। हम यह मानते हैं कि एक लंबे समय में प्राकृतिक वरण द्वारा अपने आवास में उत्तरजीविता (सर्वाइवल) और जनन को इष्टतम बनाने के लिए जीव ने अनुकूलनों का विकास किया। प्रत्येक जीव का उन परिस्थितियों का एक निश्चित परास होता है जिसे वह सहन कर सकता है। उपयोग किए जाने वाले संसाधनों की विविधता तथा पारितंत्र में उसकी एक विशिष्ट क्रियात्मक भूमिका होती है। यह सब सामूहिक रूप से उसका **निकेत** बनाते हैं।

13.1.1 प्रमुख अजैव कारक

तापमान — पारिस्थितिक रूप से सबसे ज्यादा प्रासंगिक पर्यावरणीय कारक है। आप जानते ही हैं कि पृथ्वी पर औसत तापमान ऋतु के अनुसार बदलता रहता है। भूमध्यरेखा से

ध्रुवों की ओर और मैदानों से पर्वत शिखरों की ओर उत्तरोत्तर घटता रहता है। ध्रुवीय क्षेत्रों और उच्च तुंगता (एल्टिट्यूड) वाले क्षेत्रों में तापमान अवशून्य (सबजीरो) से लेकर ग्रीष्म में उष्णकटिबंधी मरुस्थलों में 50 डिग्री सेंटी से अधिक पहुँच जाता है। लेकिन कुछ बेजोड़ आवास भी हैं जैसे कि गरम झरने और गहरे सागर के उष्णजलीय निकास जहाँ औसत तापमान 100 डिग्री. सेंटी से अधिक होता है। यह सामान्य ज्ञान है कि आम के पेड़ कनाडा और जर्मनी जैसे शीतोष्ण देशों में नहीं होते हैं और न हो सकते हैं। हिम चीते केरल के जंगलों में नहीं मिलते और ट्यूना मछली महासागर में शीतोष्ण अक्षांशों से आगे कभी-कभार ही पकड़ी जाती है। जीवधारियों के लिए तापमान के महत्त्व को आप उस समय अच्छी तरह से सराह सकते हैं जब आप को पता चले कि यह प्रकिण्वों (एंजाइमों) की बलगति (काइनेटिक्स) को प्रभावित करता है और इसके द्वारा आधारी उपापचय, जीव के अन्य कार्यिकीय प्रकार्यों तथा उसकी गतिविधियों को प्रभावित करता है। कुछ जीव तापमानों के व्यापक परास (चरम) सहन कर सकते हैं और उसमें खूब बढ़ते हैं ये **पृथुताजापी/यूरीथर्मल** कहलाते हैं), लेकिन उनमें से अधिकांश तापमानों की कम परास में ही रहते हैं ऐसी जीव तनुतापी (स्टेनोथर्मल) कहलाते हैं। विभिन्न जातियों के भौगोलिक वितरण काफी हद तक उनकी तापीय सहनशक्ति पर निर्भर है। *(क्या आपके ध्यान में कुछ पृथुतापी और तनु तापी प्राणियों और पादपों के नाम आते हैं?*

हाल ही के वर्षों में धीरे-धीरे बढ़ते हुए औसत भूमंडलीय तापमान पर चिंता बढ़ी है (अध्याय 16)। *अगर यह बढोत्तरी जारी रही तो क्या आपको आशा है कि कुछ जातियों के वितरण का दायरा प्रभावित होगा?*

जल— तापमान के बाद, जीवों के जीवन को प्रभावित करने वाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारक जल है। वास्तव में, पृथ्वी पर जीवन पानी में ही जन्मा था और यह बिना पानी के अपने आप में इसका प्रतिपालन नहीं हो सकता। मरुस्थल में इसकी उपलब्धता इतनी सीमित है कि केवल विशेष अनुकूलताओं के कारण ही जीवों का वहाँ रहना संभव है। पादपों की उत्पादकता और वितरण भी पानी पर बहुत ज्यादा निर्भर है। आप सोचते होंगे कि महासागरों, झीलों और नदियों में रहने वाले जीवों को जल-संबंधित समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता होगा लेकिन यह सच नहीं है; जलीय जीवों के लिए जल की गुणता (रासायनिक संघटन, पीएच) महत्त्वपूर्ण होता है। लवण की सांद्रता (प्रति हजार भाग में लवणता के रूप में मापी गई), अंतःस्थलीय जल में 5 से कम, समुद्र में 30-35 और कुछ अतिलवणीय लगूनों में 100 से अधिक होती है। कुछ जीव लवणता की व्यापक परास के प्रति सहनशील होते हैं (*पृथुलवणी/यूरीहेलाइन*) लेकिन अन्य कम परास में सीमित होते हैं (*तनुलवणी/स्टेनोहेलाइन*)। बहुत से अलवण जल प्राणी समुद्र के पानी में और समुद्री प्राणी अलवण जल में लंबे समय तक नहीं रह सकते; क्योंकि उन्हें परासरणी (ऑस्मोटिक) समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

प्रकाश— पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा खाद्य उत्पन्न करते हैं। यह ऐसी प्रक्रिया है जो ऊर्जा के स्रोत के रूप में धूप उपलब्ध होने पर संभव है। इसलिए हम जीवधारियों के लिए, विशेषरूप से स्वपोषियों (ऑटोट्रॉफ्स) के लिए, प्रकाश के महत्त्व को समझ सकते हैं। वनों में अनेक जातियों के छोटे पौधे (शाक और झाड़ियाँ) बहुत हल्के प्रकाश वाली परिस्थितियों में इष्टतम प्रकाश संश्लेषण करने के लिए अनुकूलित हैं; क्योंकि उन पर

सतत् लंबे, वितानमय पेड़ों की छाया रहती है। बहुत से पौधे भी पुष्पन हेतु अपनी दीप्तिकालिक (फोटोपीरिऑडिक) आवश्यकता की पूर्ति के लिए धूप पर निर्भर होते हैं। बहुत से प्राणियों के लिए भी प्रकाश इस रूप में महत्त्वपूर्ण है कि वे प्रकाश की तीव्रता और अवधि (दीप्तिकाल) में दैनिक तथा मौसमी विभिन्नताओं को अपनी चारे की खोज, (फोरेजिंग), जनन और प्रवासी गतिविधियों का समय तय करने के लिए संकेत के रूप काम में लाते हैं। पृथ्वी पर प्रकाश की उपलब्धता तापमान से निकट से संबंधित हैं क्योंकि दोनों का स्रोत सूर्य है। लेकिन महासागरों की गहराई (500 मीटर से अधिक) में पर्यावरण निरंतर अंधकारमय रहता है और वहाँ रहने वालों को यह मालूम नहीं है कि सूर्य नामक खगोलीय ऊर्जा का कोई स्रोत भी है। *तब, उनकी ऊर्जा का स्रोत क्या है?* सौर विकिरण की स्पेक्ट्रमी गुणवत्ता भी जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है। सौर विकिरण की स्पेक्ट्रम का पराबैंगनी घटक बहुत से जीवों के लिए हानिकारक है जबकि महासागर की भिन्न-भिन्न गहराइयों में मिलने वाले समुद्री पादपों के लिए दृश्य स्पेक्ट्रम के सभी रंग घटक उपलब्ध नहीं है। *समुद्रवासी लाल, हरे और भूरे शैवालों में से किन की गंभीरतम जल में मिलने की संभावना है? क्यों?*

मृदा— विभिन्न स्थानों में मृदा की प्रकृति और गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। यह जलवायु, अपक्षय-प्रक्रम (विदरिंग-प्रोसेस, क्या यह वाहित या अवसादी (सेडिमेंटरी) है तथा इसका विकास कैसे हुआ; इन सब बातों पर निर्भर है। मृदा की विभिन्न विशेषताएँ जैसे कि मृदा संघटक, कण-साइज और पुंजन मृदा के अंत:स्रवण (पर्कोलेशन) तथा जलधारण क्षमता का निर्धारण करते हैं। इन विशेषताओं के साथ-साथ पीएच, खनिज संघटन और स्थलाकृति (टोपोग्राफी) जैसे प्राचल काफी हद तक किसी क्षेत्र की वनस्पति का निर्धारण करते हैं। इसके बाद यह सब मिलकर तय करते हैं कि उस क्षेत्र में किस प्रकार के प्राणियों का पालन-पोषण हो सकता है। इसी प्रकार, जलीय पर्यावरण, अवसादी विशेषताएँ प्राय: वहाँ पनपने वाले नितलस्थ प्राणियों के प्रकार का निर्धारण करती हैं।

13.1.2 अजीवीय कारकों के प्रति अनुक्रियाएँ

यह अनुभव कर लेने के बाद कि अनेक आवासों की अजीवीय परिस्थितियाँ कभी न कभी सशक्तरूप से परिवर्तित हो सकते हैं, अब हम पूछते हैं ''इस तरह के आवासों में रहने वाले जीव दबाव वाली परिस्थितियों का कैसे सामना करते हैं या कैसे उन परिस्थितियों में रहने की युक्ति ढूँढ़ लेते हैं?'' लेकिन इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करने से पहले हमें यह पूछना चाहिए कि आखिर अत्यधिक परिवर्तनशील बाहरी पर्यावरण जीवों को क्यों परेशान करता है। व्यक्ति यह आशा करेगा कि अपने अस्तित्व के लाखों सालों के दौरान, अनेक जातियों ने अपेक्षाकृत स्थिर स्थायी आंतरिक (शरीर के भीतर ही) पर्यावरण विकसित कर लिया होगा। यह आंतरिक पर्यावरण सारे जैवरासायनिक अभिक्रियाओं (रिएक्शंस) और कार्यिकीय प्रकार्यों को अधिकतम दक्षता से होने देता है और इस प्रकार जातियों की 'तंदुरूस्ती' को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए यह निरंतरता शरीर के इष्टतम तापमान और शरीर के तरल पदार्थों के परासरणी सांद्रण के रूप में हो सकता है। तब आदर्शत: जीव को अपने आंतरिक पर्यावरण (समस्थापन/होमिओस्टैसिस) कहा जाने वाला

प्रक्रम की स्थिरता (कांस्टेंसी) बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए भले ही परिवर्ती बाह्य पर्यावरणीय परिस्थितियाँ उसके समस्थापन को बिगाड़ना चाहें। इस महत्त्वपूर्ण संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए हम एक सादृश्य की चर्चा करते हैं। मान लीजिए कोई व्यक्ति परिवेश का तापमान 25 डिग्री सें. होने पर सर्वोत्तम रूप से कार्य कर सकता है और जब बाहर झुलसाने वाली गर्मी होने या जमा देने वाली ठंड होने पर भी अपने निष्पादन को सर्वोत्तम बनाए रखना चाहता है। यह घर में, कार में यात्रा करते हुए और अपने कार्यस्थल पर गर्मियों में वातानुकूलक (एयरकंडीशनर) और सर्दियों में तापक (हीटर) का प्रयोग करके ऐसा किया जा सकता है। तब भले ही उसके बाहर का मौसम कुछ भी हो उसका निष्पादन हमेशा अधिकतम होगा। यहाँ व्यक्ति का समस्थापन, कार्यिकीय साधनों के बजाय कृत्रिम साधनों द्वारा हासिल किया जाता है। *दूसरे जीव इन स्थितियों में कैसे रह सकते हैं? हमें विभिन्न संभावनाओं का ध्यान करना चाहिए* (चित्र 13.3)।

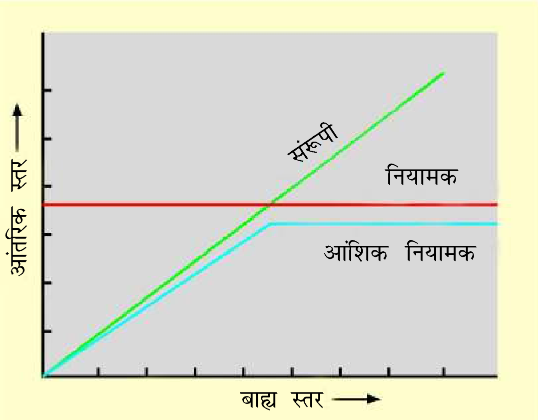

चित्र 13.3 जैविक अनुक्रिया के तरीकों का आरेखीय निरूपण

(क) ***नियमन करना*** — कुछ जीव समस्थापन कार्यिकीय (कभी-कभी व्यावहारिक भी) साधनों द्वारा बनाए रखते हैं जिससे शरीर का तापमान, परासरणी सांद्रण, आदि स्थिर रहता है। सभी पक्षी और स्तनधारी और बहुत थोड़े से निम्न कशेरूकी और कुछ अकशेरूकी जातियाँ वास्तव में ऐसा नियमन (ताप नियमन और परासरण नियमन) बनाए रखने में सक्षम हैं। विकासवादी जीव वैज्ञानिकों का विश्वास है कि स्तनधारियों की 'सफलता' इस कारण है कि वे शरीर का तापमान स्थिर बनाए रखने में सक्षम है चाहे वे अंटार्कटिका में रहे या सहारा के रेगिस्तान में।

अधिकतर स्तनधारियों द्वारा अपने शरीर के तापमान को नियमित करने के लिए जो क्रियाविधि अपनायी जाती है वह वैसी ही है जैसी कि मानव अपनाते हैं। हम शरीर का तापमान 37°C स्थिर रखते हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब बाहर का तापमान हमारे शारीरिक तापमान से अधिक होता है तब हमें बेहद पसीना आता है। गर्मी के फलस्वरूप पसीना के वाष्प बन कर उड़ने से होने वाला शीतलन वैसा ही है जैसे कि डेजर्ट कूलर चलने पर शरीर का तापमान कम हो जाता है। शीत ऋतु जब पर्यावरणीय तापमान 37°C से बहुत कम होता है। हम काँपने लगते हैं जो एक प्रकार का व्यायाम है जिससे ऊष्मा पैदा होती है और शरीर का तापमान बढ़ जाता है। लेकिन पौधों में आंतरिक तापमान को स्थिर बनाए रखने के लिए ऐसी कोई क्रियाविधि नहीं होती।

(ख) ***संरूपण रखना*** — प्राणियों की बहुत बड़ी संख्या (लगभग 99 प्रतिशत) और लगभग सभी पौधे स्थिर आंतरिक पर्यावरण नहीं बनाए रख सकते। उनके शरीर का तापमान परिवेशी तापमान के अनुसार बदलता रहता है। जलीय प्राणियों में

शरीर के तरल की परासरणी सांद्रता परिवेशी (वायु) जल की परासरणी सांद्रता के अनुसार बदलती रहती है। ये प्राणि और पादप संरूपी (कॉनफॉर्मर्स) कहलाते हैं। जीव के लिए स्थिर आंतरिक पर्यावरण के लाभ को देखते हुए, हमें यह अवश्य पूछना चाहिए कि ये संरूपी विकसित होकर नियामक क्यों नहीं बने। हमने ऊपर जिस मानव सादृश्य का उदाहरण दिया है उसे स्मरण कीजिए। कितने लोग नहीं चाहते हैं कि उनके पास भी 'वातानुकूलक' हो? और कितने हैं जो वास्तव में उसे खरीद सकते हैं? बहुत से लोग गरमी के महीनों में केवल पसीना निकल जाने देते हैं और उपानुकूलतम (सबऑप्टिमन) निष्पादन से ही संतोष कर लेते हैं। बहुत से जीवों के लिए ताप नियमन (सबऑप्टिमल) ऊर्जा के संदर्भ में खर्चीला है। यह बात मंजोरू (श्रू) और गुंजन पक्षी जैसे छोटे प्राणियों के मामले में विशेष रूप से सच है। ताप हानि या ताप लाभ पृष्ठीय क्षेत्रफल (सर्फेस एरिया) का प्रकार्य है। चूँकि छोटे प्राणियों का पृष्ठीय क्षेत्रफल उनके आयतन की अपेक्षा ज्यादा होता है इसलिए जब बाहर ठंड होती है तो उनके शरीर की ऊष्मा बहुत तेजी से कम होती है। ऐसी स्थिति में उन्हें उपापचय (मेटाबोलिज्म) द्वारा शरीर की ऊष्मा पैदा करने के लिए काफी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। यह मुख्य कारण है कि बहुत छोटे प्राणी बिरले ही ध्रुवीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं। विकास क्रम के दौरान स्थिर आंतरिक पर्यावरण बनाए रखने की लागत और लाभ का विचार किया जाता है। कुछ जातियों ने नियमन करने की क्षमता विकसित कर ली है, लेकिन केवल सीमित परास वाली पर्यावरणीय परिस्थितियों में। यदि पर्यावरणीय परास ज्यादा हो तो वे केवल संरूपण करते हैं। अगर दबावभरी बाहरी परिस्थितियाँ स्थान विशेष में हैं अथवा केवल थोड़ी अवधि के लिए हैं तो जीव के पास दो अन्य विकल्प हैं—

(ग) ***प्रवास करना*** — जीव दबावपूर्ण आवास से अस्थायी रूप से अधिक अनुकूल क्षेत्र में चला जाए और जब दबावभरी अवधि बीत जाय तो वापस लौट आए। मानव सादृश्य में, यह नीति ऐसी है जैसे गरमी की अवधि में व्यक्ति दिल्ली से शिमला चला जाए। अनेक प्राणी, विशेषतः पक्षी, शीतऋतु के दौरान लंबी दूरी का प्रवास करके अधिक अतिथि अनुकूली क्षेत्रों में चले जाते हैं। प्रत्येक शीतकाल में राजस्थान स्थित प्रसिद्ध केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (भरतपुर) साइबेरिया और अन्य अत्यधिक ठंडे उत्तरी क्षेत्रों से आने वाले प्रवासी पक्षियों को अतिथि के रूप में स्वागत करता है।

(घ) ***निलंबित करना*** — जीवाणुओं, कवकों और निम्न पादपों में विभिन्न प्रकार के मोटी भित्ति वाले बीजाणु बन जाते हैं, जिससे उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित बचे रहने में सहायता मिलती है। उपयुक्त पर्यावरण उपलब्ध होने पर ये अंकुरित हो जाते हैं। उच्च पादपों में, बीज और कुछ दूसरी वनस्पतिक जनन संरचनाएँ उनके परिक्षेपण में सहायता करने के अतिरिक्त दबाव वाले समय से पार पाने के साधन के रूप में काम आते हैं। नमी और तापमान की अनुकूल परिस्थितियों में वे नए पादपों के रूप में अंकुरित होते हैं। वे अपनी उपापचयी

सक्रियता को कम कर और 'प्रसुप्ति' (डॉरमेंसी) अवस्था में जाकर ऐसा करते हैं और प्राणियों में, अगर जीव प्रवास नहीं कर सकता तो वह समय में पलायन करके दबाव से बचता है। शीतऋतु में भालुओं की *शीतनिष्क्रियता* (हाइबर्नेशन) में जाना तथा उस समय पलायन से बचाव करने का जाना पहचाना मामला है। कुछ घोंघे और मछलियाँ ग्रीष्म ऋतु से संबंधित ताप तथा जलशुष्कन जैसी समस्याओं से बचने के लिए *ग्रीष्मनिष्क्रियता* (अस्टिवेशन) में चली जाती हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में झीलें और तालाबों में प्राणिप्लवक (जूप्लैंकटन) की अनेक जातियाँ *उपरति* (डायापॉज) में आ जाती है जो निलंबित परिवर्धन की एक अवस्था है।

13.1.3 अनुकूलन

अपने पर्यावरण की चरम परिस्थितियों का सामना करने के लिए हमने जीवों को उपलब्ध अनेक विकल्पों को अपनाते देखा है जहाँ कुछ जीव विशेष कार्यिकीय सामंजस्य द्वारा अनुक्रिया करने में समर्थ होते हैं जबकि दूसरे जीव व्यावहारिक अनुक्रिया द्वारा करते हैं (अस्थायी रूप से कम दबाव भरे आवास में प्रवास करके)। ये अनुक्रियाएँ वास्तव में उनका अनुकूलन भी हैं। इसलिए, हम **अनुकूलन** की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं— यह जीव का कोई एक ऐसा गुण (आकारिकीय, कार्यिकीय, व्यावहारिक) है जो उसे अपने आवास में जीवित बने रहने और जनन करने के योग्य बनाता है। अनेक अनुकूलन लंबे समय की विकास यात्रा के बाद विकसित हुए हैं और आनुवंशिकत: स्थिर हो गए हैं। जल के बाह्य स्रोत न होने पर उत्तरी अमेरीका के मरुस्थल में कंगारू-चूहा अपनी जल की आवश्यकता की पूर्ति अपनी आंतरिक वसा के ऑक्सीकरण (जिसमें जल एक उप-उत्पाद है) से पूरी करने में सक्षम है। इसमें अपने मूत्र को सांद्रित करने की क्षमता भी है जिससे उत्सर्जी पदार्थों को हटाने के लिए जल के न्यूनतम आयतन काम में लाई जाती है।

अनेक मरुस्थलीय पौधों की पत्तियों की सतह पर मोटी उपत्वचा (क्यूटिकल) होती है और उनके धंसे हुए रंध्र (स्टोमैटा) गहरे गर्त में व्यवस्थित होते हैं, ताकि वाष्पोत्सर्जन (ट्रांस्पिरेशन) द्वारा जल की न्यूनतम हानि हो। उनके प्रकाश संश्लेषी (सी ए एम) मार्ग भी विशेष प्रकार के होते हैं जिसके कारण वे अपने रंध्र दिन के समय बंद रख सकते हैं। कुछ मरुस्थली पादपों जैसे *नागफनी* (ओपंशिया) *कैक्टस*, आदि में पत्तियाँ नहीं होती बल्कि वे कांटे की रूप में रूपांतरित हो जाती हैं और प्रकाश संश्लेषण का प्रकार्य चपटे तनों द्वारा होता है।

ठंडी जलवायु वाले स्तनधारियों के कान और पाद आमतौर पर छोटे होते हैं ताकि ऊष्मा की हानि न्यूनतम हो (यह *'ऐलन का नियम'* कहलाता है)। ध्रुवीय समुद्रों में सील जैसे जलीय स्तनधारियों में उनकी त्वचा के नीचे वसा (तिमिवसा/बलबर) की मोटी परत होती है जो ऊष्मारोधी (इंसुलेटर) का काम करती है और शरीर की ऊष्मा हानि को कम करती है।

कुछ जीवों के अनुकूलन कार्यिकीय होते हैं जिसकी वजह से वे दबावपूर्ण परिस्थितियों के प्रति शीघ्र अनुक्रिया करते हैं। अगर आपको कभी उच्च तुंगता वाले क्षेत्र

में जाने का मौका मिले (3,500 मी. से अधिक, मनाली के पास रोहतांग दर्रा, तिब्बत में मानसरोवर) तो आपने *'तुंगता बीमारी'* का अवश्य अनुभव किया होगा। इस 'बीमारी' के लक्षण है मिचली, थकान, और हृदय स्पंदन में वृद्धि। इसका कारण यह है कि उच्च तुंगता वाले क्षेत्र में वायुमंडलीय दाब कम होता है इसलिए शरीर को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिलती। लेकिन धीरे-धीरे आप पर्यानुकूलित (एक्लेमिटाइज्ड) हो जाते हैं और आपको तुंगता बीमारी का अनुभव नहीं होता। आपके शरीर ने इस समस्या का समाधान कैसे किया? आपका शरीर कम ऑक्सीजन उपलब्ध होने की क्षतिपूर्ति लाल रुधिर कोशिका का उत्पादन बढ़ाकर, हीमोग्लोबिन की बंधनकारी क्षमता घटाकर और श्वसन दर बढ़ाकर लेता है। *हिमालय के ऊँचे क्षेत्रों में अनेक जनजातियाँ रहती हैं। पता लगाइए कि क्या मैदानी इलाकों में रहने वाले लोगों की तुलना में उन जनजातियों में सामान्यतया लाल रुधिर कोशिका की संख्या (या कुल हीमोग्लोबिन) ज्यादा होती हैं?*

अधिकांश प्राणियों में उपापचयी अभिक्रियाएँ और इसलिए सभी कार्यिकीय प्रकार्य संकीर्ण तापमान परास में इष्टतम होते हैं (मानव में यह तापमान 37°C है)। लेकिन ऐसे सूक्ष्मजीव (आर्किबैक्टीरिया) भी हैं जो तप्त झरनों और गहरे समुद्र के उष्णजलीय निकासों में, जहाँ तापमान 100 डिग्री से भी ज्यादा होता है, में खूब फलते-फूलते हैं। यह कैसे संभव है? अनेक मछलियाँ दक्षिण ध्रुवीय जल में खूब पनपती हैं जहाँ का तापमान हमेशा शून्य से कम रहता है। *वे अपने शरीर के तरल को जमने से कैसे बचा लेती हैं?*

अनेकों समुद्री अकेशरूकी और मछलियाँ महासागर की बहुत गहराई में रहती हैं जहाँ का दाब उस सामान्य वायुंमडलीय दाब से 100 गुना अधिक होता है जो हम पृथ्वी पर अनुभव करते हैं। *वे ऐसे जबरदस्त दाब में कैसे रहती हैं और क्या उनमें कोई विशेष एंजाइम होते हैं?* ऐसी चरम पर्यावरणीय परिस्थितियों में रहने वाले जीव जैवरासायनिक अनुकूलनों का मोहक क्रमविन्यास दर्शाते हैं।

कुछ जीव अपने पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों का सामना करने के लिए व्यावहारिक अनुक्रियाएँ दर्शाते हैं। स्तनधारियों में अपने आवास के उच्च तापमान से निबटने के लिए जो कार्यिकीय योग्यता होती है, मरुस्थल की छिपकलियों में इस योग्यता की कमी है लेकिन वे व्यावहारिक साधनों द्वारा अपने शरीर के तापमान को काफी स्थिर बनाए रखती हैं। जब उनका तापमान सुविधा स्तर से नीचे चला जाता है तब वे धूप सेंक कर ऊष्मा अवशोषित करती हैं लेकिन जब परिवेश का तापमान बढ़ने लगता है तब वे छाया में चली जाती हैं। कुछ जातियों में भूमि से ऊपर की ऊष्मा से बचने के लिए मिट्टी में बिल खोदने की क्षमता होती है।

13.2 समष्टियाँ

13.2.1 समष्टि गुण

प्रकृति में, हमें किसी भी जाति के पृथक, एकल व्यष्टि के दर्शन बिरले ही होते हैं; उनमें से अधिकांश सुपरिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में समूह में रहते हैं, समान संसाधनों का साझा

उपयोग करते हैं अथवा उनके लिए स्पर्धा करते हैं, संकरण (इनब्रीड) करते हैं और इस प्रकार वे **समष्टि** की रचना करते हैं। हालाँकि संकरण शब्द में लैंगिक जनन कार्य अंतर्निहित है, अलैंगिक जनन से भी जन्म लेने वाले व्यष्टियों का समूह को भी पारिस्थितिक अध्ययन के लिए आमतौर से समष्टि मान लिया जाता है। आर्द्र भूमि में सभी जलकाक, वन क्षेत्र के सागवान (टीकवूड) के पेड़, संवर्धन प्लेट के जीवाणु, त्याग दिए गए आवास में चूहे, और तालाब में कमल के पौधे, आदि समिष्ट के कुछ उदाहरण हैं। पहले अध्यायों में आपने यह सीखा कि हालाँकि व्यष्टि जीव वह है जो परिवर्तित पर्यावरण का सामना करे, प्राकृतिक वरण द्वारा वांछित विशेषकों (ट्रेट) को विकसित करने का कार्य समष्टि स्तर पर ही होता है। इसलिए समष्टि पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि यह पारिस्थितिकी को समष्टि आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) और विकास से जोड़ता है।

समष्टि में कुछ ऐसे गुण होते हैं जो व्यष्टि जीव में नहीं होते। व्यष्टि जन्मता और मरता है लेकिन समष्टि में **जन्म दरें और मृत्यु दरें** होती हैं। समष्टि में इन दरों को क्रमश: प्रति व्यक्ति जन्म दर और मृत्यु दर कहते हैं। इसलिए दर को समष्टि के सदस्यों के संबंधों में संख्या में परिवर्तन (वृद्धि या ह्रास) के रूप में प्रकट किया उदाहरण के लिए अगर किसी ताल में पिछले साल कमल के 20 पौधे थे और जनन द्वारा 8 नए पौधे और हो जाते हैं जिससे वर्तमान समष्टि 28 हो जाती है, तो हम जन्म दर को 8/20 = 0.4 संतति प्रति कमल प्रतिवर्ष के हिसाब से परिकलन (कैल्कुलेट) करते हैं। अगर प्रयोगशाला समष्टि में 40 फलमक्खियों में से 4 व्यष्टि किसी विशिष्टीकृत समय अंतराल में, मान लीजिए एक सप्ताह के दौरान मर जाते हैं, तो उस समय के दौरान समष्टि में मृत्यु दर 4/40= 0.1 व्यष्टि प्रति फलमक्खी प्रति सप्ताह कहलाएगी।

समष्टि का दूसरा विशिष्ट गुण **लिंग अनुपात** यानि नर एवं मादा का अनुपात है। व्यष्टि या तो नर है या मादा है, लेकिन समष्टि का लिंग अनुपात होता है (जैसे कि समष्टि का 60 प्रतिशत स्त्री हैं और 40 प्रतिशत नर हैं)।

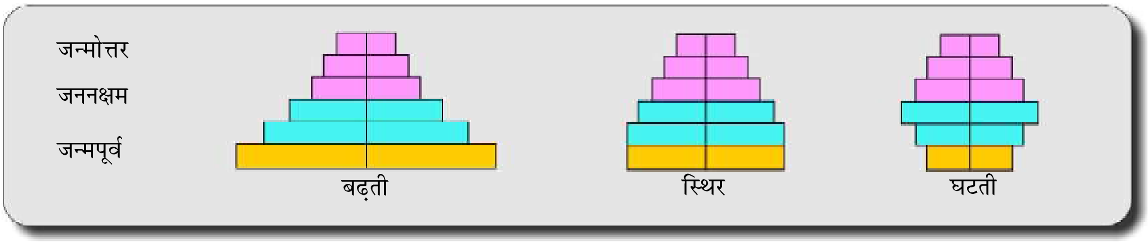

चित्र 13.4 मानव समष्टि के लिए आयु पिरैमिडों का निरूपण

किसी दिए गए समय में समष्टि भिन्न आयु वाले व्यष्टियों से मिलकर बनती है। अगर समष्टि के लिए आयु वितरण (दी गई आयु अथवा आयु वर्ग के व्यष्टियों का प्रतिशत) आलेखित (प्लॉटेड) किया जाता है तो बनने वाली संरचना आयु पिरैमिड कहलाती है (चित्र 13.4)। मानव समष्टि के लिए आयु पिरैमिड आमतौर पर नर और

स्त्रियों का आयु वितरण संयुक्त आरेख को दर्शाता है। पिरैमिड का आकार समष्टि की स्थिति प्रतिबिंबित करता है – (क) क्या यह बढ़ रहा है, (ख) स्थिर है या (ग) घट रहा है।

समष्टि का साइज आवास में उसकी स्थिति के बारे में बहुत कुछ बताता है। समष्टि हम कैसे भी पारिस्थितिक प्रक्रम अन्वेषण (इन्वेस्टिगेट) करना चाहें, भले ही यह दूसरी जातियों से स्पर्धा का परिणाम हो, परभक्षी का प्रभाव हो, या पीड़कनाशी (पेस्टिसाइड) अनुप्रयुक्त (एप्लाइड) करने का प्रभाव हो, हम उनका मूल्यांकन हमेशा ही समष्टि के साइज में कोई परिवर्तन के संदर्भ में करते हैं। प्रकृति में समष्टि के साइज की इतनी कम संख्या में भी (10 से कम भरतपुर आर्द्रभूमि क्षेत्रों में) साइबेरियाई सारस या किसी साल लाखों में हो सकती है (तालाब में *क्लेमिडोमोनास*)। यह आवश्यक नहीं है कि समष्टि को, जो अधिक तकनीकी रूप से **समष्टि घनत्व** कहलाती है। (N के रूप में अभिहित)। हालाँकि समष्टि घनत्व की सबसे उपयुक्त माप आमतौर पर कुल संख्या है, कुछ मामलों में यह अर्थहीन होती है अथवा इसका निर्धारण कठिन होता है। किसी क्षेत्र में, अगर 200 *पार्थेनियम* पादप हैं, लेकिन केवल एक अकेला बड़े वितान (कैनोपी) वाला बरगद का विशाल वृक्ष है तो यह कहना कि पार्थेनियम के सापेक्ष बरगद का समष्टि घनत्व कम है उस समुदाय में बरगद की महत्त्वपूर्ण भूमिका को अवांकलन करने के बराबर है। ऐसे मामलों में, समष्टि साइज के माप के लिए प्रतिशत आवरण अथवा जीव भार (बायोमास) अधिक अर्थपूर्ण है। अगर समष्टि बहुत बड़ी है और गणना असंभव है अथवा बहुत समय लेने वाली है तो कुल संख्या को अपनाने का आधार भी सरल नहीं है। *अगर आपके पास प्रयोगशाला में पेट्रीडिश में जीवाणुओं का घना संवर्ध (कल्चर) है तो उसका घनत्व बताने की सर्वोतम माप क्या है?* कभी-कभी, पारिस्थितिक अन्वेषणों के लिए निरपेक्ष समष्टि घनत्व जानने की आवश्यकता नहीं है; आपेक्षिक घनत्वों से भी उद्देश्य की पूर्ति भली भाँति हो जाती है। उदाहरण के लिए प्रति पाश (ट्रैप) पकड़ी गई मछलियों की संख्या, झील में कुल समष्टि घनत्व की काफी ठीक माप है। हम बहुधा समष्टि के साइज के बिना वास्तव में गिने अथवा बिना देखे अप्रत्यक्ष रूप से आकलन करते हैं। हमारे राष्ट्रीय उद्यानों और बाघ आरक्षितियों (रिजर्व्स) में बाघ गणना प्राय: पग चिह्नों और मल गुटिकाओं (पैलेट) आधारित होती है।

13.2.2 समष्टि वृद्धि

किसी जाति के लिए समष्टि की साइज स्थैतिक प्राचल नहीं है। यह समय-समय पर बदलता रहता है जो विभिन्न कारकों पर आहार उपलब्धता, परभक्षण दाब, और मौसमी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वास्तव में ये परिवर्तन हमें समष्टि में क्या घटित हो रहा है, इसका कुछ बोध कराते हैं। क्या समष्टि घनत्व बढ़ रहा है या घट रहा है। अंतिम कारण कुछ भी रहे हों, परंतु दी गई अवधि के दौरान दिए गए आवास में समष्टि का घनत्व चार मूलभूत प्रक्रमों (प्रोसेस) में घटता-बढ़ता है। इन चारों में से दो (जन्मदर और आप्रवासन) समष्टि घनत्व को बढ़ाते हैं और दो (मृत्युदर तथा उत्प्रवासन) इसे घटाते हैं।

(क) ***जन्मदर***— जन्मदर से मतलब समष्टि में जन्मी उस संख्या से है जो दी गई अवधि के दौरान आंरभिक घनत्व में जुड़ती है।

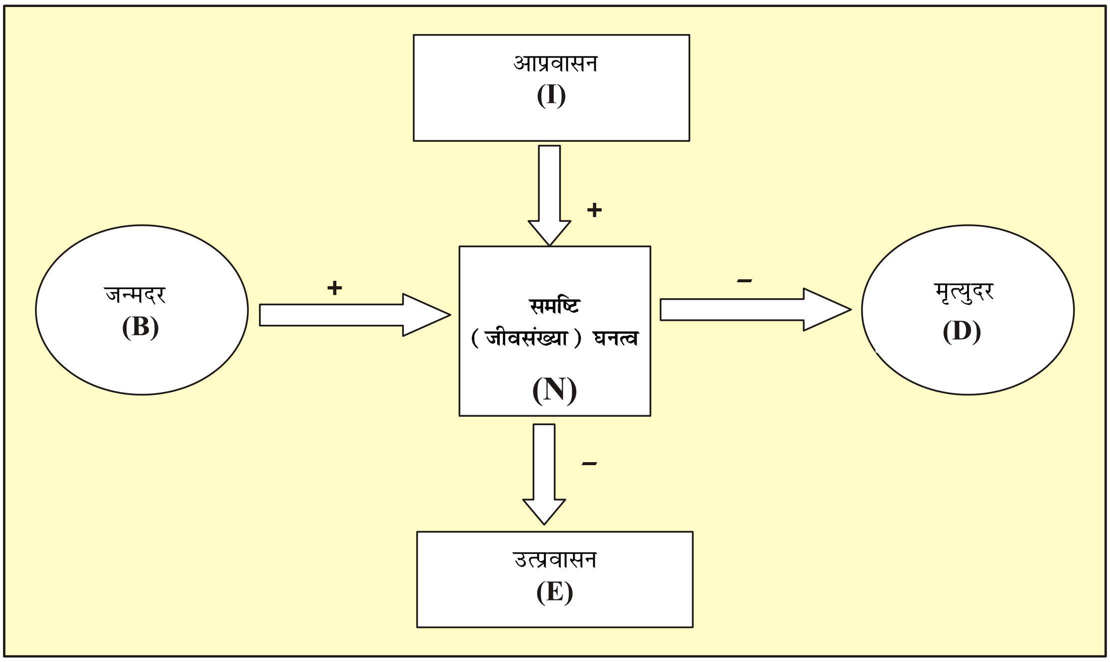

चित्र 13.5

(ख) ***मृत्युदर***— यह दी गई अवधि समष्टि में होने वाली मौतों की संख्या है

(ग) ***आप्रवासन***— उसी जाति के व्यष्टियों की वह संख्या है जो दी गई समय अवधि के दौरान आवास में कहीं और से आए हैं।

(घ) ***उत्प्रवासन***— समष्टि के व्यष्टियों की वह संख्या है जो दी गई समयावधि के दौरान आवास छोड़कर कहीं और चले गए हैं।

इसलिए अगर समय t पर समष्टि घनत्व N है तो समय t+1 पर इसका घनत्व

$$N_{t+1} = N_t + [(B + I) - (D + E)]$$ है

ऊपर दिए गए समीकरण चित्र (13.5) से आप देख सकते हैं कि अगर जन्म लेने वालों की संख्या जमा आप्रवासियों की संख्या (B+I) मरने वालों की संख्या जमा उत्प्रवासियों की संख्या (D+E) से अधिक है तो समष्टि घनत्व बढ़ जाएगा अन्यथा यह घट जाएगा। सामान्य परिस्थितियों में, समष्टि घनत्व को प्रभावित करने वाले कारकों में जन्म और मृत्यु सबसे महत्त्वपूर्ण है, दूसरे दो कारक विशेष परिस्थितियों में ही महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, अगर आवास की बस्ती अभी बनी है, तो जन्म दरों की अपेक्षा आप्रवासन समष्टि की वृद्धि में अधिक महत्त्वपूर्ण है।

वृद्धि मॉडल — क्या किसी समष्टि की वृद्धि समय के साथ कोई विशिष्ट और प्रागुक्ति योग्य प्रतिरूप दर्शाती है? हम अपने देश में मानव समष्टि की अनियंत्रित वृद्धि और इससे जन्मी समस्याओं से चिंतित हैं और इसलिए अगर प्रकृति में भिन्न प्राणी समष्टियाँ इसी तरह वृद्धि करती हैं अथवा वृद्धि पर कुछ नियंत्रण दर्शाती हैं। इस बारे में हमारी जिज्ञासा स्वाभाविक है। समष्टि वृद्धि को कैसे नियंत्रित रखा जा सकता है इस बारे में शायद हम प्रकृति से एक दो बातें सीख सकते हैं।

(क) ***चरघातांकी वृद्धि***— किसी समष्टि की अबाधित वृद्धि के लिए स्पष्टतः संसाधन (आहार और स्थान) उपलब्ध होना अत्यावश्यक है। आदर्शतः आवास

में जब संसाधन असीमित होते हैं तो प्रत्येक जाति में संख्या में वृद्धि कर सकने की अपनी जन्मजात शक्ति को पूरी तरह अनुभव करने की योग्यता होती है जैसा कि डार्विन ने अपने प्राकृतिक वरण के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए प्रेक्षित किया। तब समष्टि चरघातांकी (एक्सपोनेन्शियल) अथवा ज्यामितीय (ज्योमेट्रिकल) शैली में वृद्धि करती है। अगर N साइज की समष्टि में, जन्म दरें (कुल संख्या नहीं, बल्कि प्रति व्यक्ति जन्म) b के रूप में और मृत्यु दरें (प्रति व्यक्ति मृत्यु दर) d के रूप में निरूपित की जाती हैं तब इकाई समय अवधि t (dN/ dt) के दौरान वृद्धि या कमी निम्नलिखित होगी—

$dN/dt = (b - d) \times N$

मान लीजिए $(b-d) = r$, तब

$\mathbf{dN/dt = rN}$

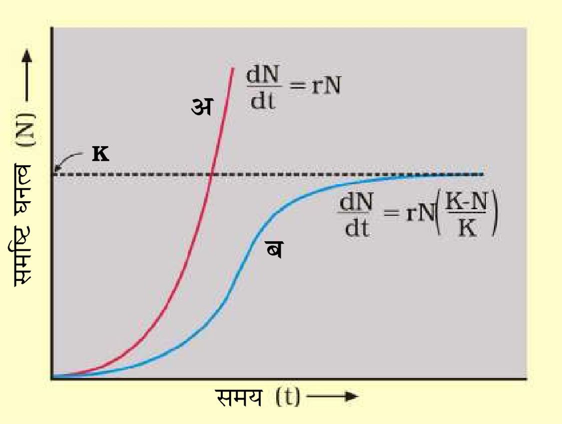

चित्र 13.6 समष्टि वृद्धि वक्र
(अ) जब अनुक्रियाएँ वृद्धि को सीमित करने वाली नहीं हैं तब आरेख चरघातांकी है,
(ब) जब अनुक्रियाएँ वृद्धि के लिए सीमाकारी हैं तब आरेख लॉजिस्टिक है,
(K) पोषण क्षमता है

इस समीकरण में r' 'प्राकृतिक वृद्धि की इंट्रीन्जिक दर' कहलाती है और समष्टि वृद्धि पर किसी भी जैविक अथवा अजीवीय कारक के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण प्राचल है।

r मूल्यों के परिणाम (मैग्निट्यूड) के बारे में आपको कुछ बोध कराने के लिए, नार्वे चूहे के लिए r 0.015 है और आटा भृंग के लिए यह 0.12 है। 1981 में भारतवर्ष में मानव समष्टि के लिए r मान 0.0205 थी। *वर्तमान r मान क्या है पता कीजिए। इसके परिकलन के लिए आपको जन्म दरों और मृत्युदरों का पता होना जरूरी है।*

ऊपर दिया गया समीकरण समष्टि के चरघातांकी अथवा ज्यामितीय वृद्धि बताता है (चित्र 13.6) और जब N को समय के संदर्भ में आरेखित करते हैं तो इसका नतीजा J- आकार का वक्र है। अगर आपको मूलभूत कलन आता है तो आप चरघातांकी वृद्धि समीकरण के समाकलित रूप को निम्न प्रकार से दिखा सकते हैं–

$N^t = No^{\ ert}$

N^t = समय t में समष्टि घनत्व

N_O = समय शून्य में समष्टि घनत्व

r = प्राकृतिक वृद्धि की इंट्रीन्जिक दर

e = प्राकृतिक लघुगणकों (लॉगेरिथ्मों) का आधार (2.71828)

असीमित संसाधन परिस्थितियों में चरघातांकी रूप से वृद्धि करने वाली कोई भी जाति थोड़े समय में ही विशाल समष्टि घनत्वों तक पहुँच सकती है। डार्विन ने दर्शाया कि हाथी जैसा धीमे बढ़ने वाला प्राणी, रोक न होने पर विशाल संख्या तक पहुँच सकता है। चरघातांकी रूप से वृद्धि करने पर विशाल समष्टि कितनी जल्दी निर्मित हो जाती है। इसके बारे में निम्नलिखित किस्सा लोकप्रिय है–

(राजा और मंत्री शतरंज खेलने बैठे। अपनी जीत के प्रति आश्वस्त राजा मंत्री द्वारा प्रस्तावित किसी शर्त को स्वीकार करने के लिए तैयार था। मंत्री ने नम्रतापूर्वक कहा कि

अगर वह जीत गया तो वह गेहूँ के केवल कुछ दाने लेगा जिसकी मात्रा शतरंज की बिसात के पहले खाने (वर्ग) में एक दाना, तब दूसरे खाने में 2, तीसरे में 4, चौथे में 8 और इस प्रकार दानों को पिछली मात्रा से दुगना करते हुए अगले खानों में रखते जाना है जब तक कि सभी 64 खाने भर नहीं जाते। राजा ने मूर्खतापूर्ण लगने वाली शर्त मान ली और खेल शुरू किया लेकिन राजा के दुर्भाग्यवश मंत्री जीत गया। राजा को लगा कि मंत्री की शर्त पूरी करना बहुत आसान था। उसने पहले खाने में एक दाना रखकर शुरुआत की और मंत्री द्वारा सुझाई गई प्रक्रिया के अनुसार अन्य खानों को भरता गया लेकिन बिसात के आधे खाने भरने तक राजा ने अनुभव किया कि उसके राज्य में उत्पादित सारे गेहूँ मिलकर भी सभी 64 वर्गों को नहीं भर पाएँगे। अब छोटे से पैरामीशियम के बारे में सोचिए जो केवल एक व्यष्टि से आरंभ करके द्वि-विभाजन (बाइनरीफिशन) द्वारा प्रतिदिन संख्याओं को दुगुना करता रहता है और कल्पना कीजिए कि 64 दिनों में इसकी समष्टि साइज दिमाग को चकरा देने वाली हो जाएगी। बशर्ते असीमित आहार और स्थान उपलब्ध होता रहे)।

(ख) ***संभार तंत्र (लॉजिस्टिक) वृद्धि***— प्रकृति में किसी भी समष्टि के पास इतने असीमित संसाधन नहीं होते कि चरघातांकी वृद्धि होती रहे। इसके कारण सीमित संसाधनों के लिए व्यष्टियों में प्रतिस्पर्धा होती है। आखिर में 'योग्यतम्' व्यष्टि जीवित बना रहेगा और जनन करेगा। अनेक देशों की सरकारों ने भी इस तथ्य को समझा है और मानव समष्टि वृद्धि को सीमित करने के लिए विभिन्न प्रतिबंध लागू किए हैं। प्रकृति में, दिए गए आवास के पास अधिकतम संभव संख्या के पालन — पोषण के लिए पर्याप्त संसाधन होते हैं इससे आगे और वृद्धि संभव नहीं है। उस आवास में उस जाति के लिए इस सीमा को प्रकृति की **पोषण क्षमता** (k) मान लेते हैं।

किसी आवास में सीमित संसाधनों के साथ वृद्धि कर रही समष्टि आरंभ में पश्चता प्रावस्था (लैग फेस) दर्शाती है। उसके बाद त्वरण और मंदन और अंतत: अनंतस्पर्शी प्रावस्थाएँ आती हैं, जब समष्टि घनत्व पोषण क्षमता तक पहुँच जाती है। समय (t) के संदर्भ में N का आरेख (प्लॉट) से सिग्मॉइड वक्र बन जाता है। इस प्रकार की समष्टि वृद्धि *विर्हुल्स्ट-पर्ल लॉजिस्टिक वृद्धि* (चित्र 13.5) कहलाता है और निम्नलिखित समीकरण द्वारा वर्णित है—

$$dN/dt = \frac{rN(K-N)}{K}$$

जहाँ N = समय t पर समष्टि घनत्व

r = प्राकृतिक वृद्धि की (इंट्रीन्जिक) दर

K = पोषण क्षमता

अधिकांश प्राणियों की समष्टियों में वृद्धि के लिए संसाधन परिमित (फाइनाइट) हैं और देर-सबेर सीमित होने वाले हैं, इसलिए लॉजिस्टिक वृद्धि मॉडल को अधिक यथार्थपूर्ण माना जाता है।

सरकारी (जन) गणना से भारतवर्ष के लिए पिछले 100 वर्षों के समष्टि आँकड़े एकत्रित कीजिए उन्हें आरेखित कीजिए और जाँचिए कि कौन सा वृद्धि प्रतिरूप स्पष्ट है।

13.2.3 जीवन-वृत्त विभिन्नता

समष्टियाँ जिस आवास में रहती हैं उसमें अपनी जनन योग्यता, जिसे डार्विनी योग्यता (डार्विनियन फिटनेस) भी कहा जाता है (उच्च r मान), को अधिकतम बनाने के लिए विकसित होती हैं। खास प्रकार के वरण दबाव-सेट में जीव सर्वाधिक दक्ष जनन-युक्ति की ओर विकास करते हैं कुछ अपने जीवन काल में केवल एक बार प्रजनन करती हैं (प्रशांत महासागरीय सामन मछली और बाँस) जबकि अन्य अपने जीवन काल में कई बार प्रजनन करती हैं (अधिकांश पक्षी और स्तनधारी), कुछ छोटी साइज की संतति बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न करती हैं (ऑयस्टर और पैलेजीक मछलियाँ) जबकि दूसरी बड़ी साइज की संतति कम संख्या में उत्पन्न करती हैं (पक्षी और स्तनधारी)। इसलिए योग्यता को अधिकतम करने के लिए कौन वांछनीय है? पारिस्थितिकविज्ञों का सुझाव है कि जीवों के जीवन-वृत्त विशेषक (ट्रेट) जिस आवास में वे रहते हैं; उसके अजीवीय और जीवीय घटकों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के संदर्भ में विकसित होते हैं। भिन्न जातियों में जीवन वृत्त विशेषकों का विकास इस समय अनुसंधान का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है और पारिस्थितिकीविज्ञ अनुसंधान में लगे हुए हैं।

13.2.4 समष्टि पारस्परिक क्रियाएँ

क्या आप पृथ्वी पर किसी ऐसे प्राकृतिक आवास के बारे में सोच सकते हैं जहाँ केवल एक ही जाति का वास हो? ऐसा कोई आवास है ही नहीं और इसलिए ऐसी परिस्थिति अकल्पित है। किसी भी जाति के लिए न्यूनतम आवश्यकता एक और जाति की है जिसको वह भोजन के रूप में ले सके। पादप जाति भी जो अपना आहार स्वयं बनाती है, अकेली जीवित नहीं रह सकती; इसे मृदा के कार्बनिक पदार्थ को तोड़ने और अकार्बनिक पोषकों को इसके अवशोषण के लिए लौटने के लिए मृदा के सूक्ष्मजीवों की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा बिना प्राणी एजेंट के पादप परागण की व्यवस्था कैसे करेगा? यह स्पष्ट है कि प्रकृति में प्राणी, पादप और सूक्ष्मजीव न तो पृथक रह सकते हैं और न ही रहते हैं, बल्कि जैव समुदाय बनाने के लिए विभिन्न तरीकों से परस्पर क्रिया करते हैं। न्यूनतम समुदायों में भी, अनेक परस्पर क्रियाशील अनुबंधताएँ होती हैं, हालाँकि सभी बंधताएँ आसानी से दिखाई नहीं देती।

अंतराजातीय पारस्परिक क्रियाएँ दो भिन्न जातियों की समष्टियों की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होती हैं। वे क्रियाएँ एक जाति या दोनों जातियों के लिए हितकारी, हानिकारक या उदासीन (न हानिकारक न लाभदायक) हो सकती हैं। लाभदायक पारस्परिक क्रियाओं के लिए '+' चिह्न तथा हानिकारक के लिए '–' चिह्न और उदासीन के लिए '0' चिह्न से दर्शाएँ। आइए! अंतराजातीय पारस्परिक क्रियाओं के सभी संभावित परिणामों पर विचार करें। (सारणी 13.1)

एक दूसरे से पारस्परिक क्रिया में- सहोपकारिता में दोनों जातियों को लाभ होता है और स्पर्धा में दोनों को हानि होती है। **परजीविता** और **परभक्षण** दोनों में केवल एक जाति को लाभ होता है (क्रमशः परजीवी और परभक्षी को) और पारस्परिक क्रिया दूसरी

सारणी 13.1 समष्टियों की पारस्परिक क्रिया

जाति अ	जाति ब	पारस्परिक क्रिया का नाम
+	+	*सहोपकारिता*
–	–	*स्पर्धा*
+	–	*परभक्षण*
+	–	*परजीविता*
+	0	*सहभोजिता (कमन्सेलिज्म)*
–	0	*अंतरजातीय परजीविता (एमेन्सेलिज्म)*

जाति (क्रमशः परपोषी और शिकार) के लिए हानिकारक है। ऐसी पारस्परिक क्रिया जिसमें एक जाति को लाभ होता है और दूसरी को न लाभ होता है न हानि। उसे **सहभोजिता** कहते हैं। दूसरी ओर, अंतरजातीय परजीविता में एक जाति को हानि होती है जबकि दूसरी जाति-अप्रभावित रहती है। परभक्षण, परजीविता और सहभोजिता इन तीनों की एक साझा विशेषता है — पारस्परिक क्रिया करने वाली जातियाँ निकटता से साथ-साथ रहती हैं।

(क) ***परभक्षण*** — *यदि किसी समुदाय में पादपों को खाने के लिए प्राणी ही न हों तो स्वपोषी जीवों द्वारा स्थिर की गई उस सारी ऊर्जा का क्या होगा?* परभक्षण को आप प्रकृति का ऐसा तरीका सोच सकते हैं जिसमें पादपों द्वारा स्थिर की गई ऊर्जा उच्चतर पोषी स्तरों को स्थानांतरित होती है। जब हम परभक्षी और शिकार के बारे में सोचते हैं तो शायद बाघ और हरिण का उदाहरण सहज ही हमारे दिमाग में आता है, लेकिन बीज को खाने वाली गोरैया भी परभक्षी से कम नहीं। हालाँकि पौधों को खाने वाले प्राणियों को *शाकाहारी* के रूप में अलग श्रेणी में रखा जाता है, लेकिन सामान्य पारिस्थितिक संदर्भ में वे भी परभक्षी से ज्यादा भिन्न नहीं हैं।

पोषी स्तरों तक ऊर्जा स्थानांतरण के लिए संनाल ('कंड्यूट') के रूप में कार्य करने के अलावा, परभक्षी एक दूसरी महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाते हैं। वे शिकार समष्टि को नियंत्रण रखते हैं। अगर परभक्षी नहीं होते तो शिकार जातियों का समष्टि घनत्व बहुत ज्यादा हो जाता और परितंत्र में अस्थिरता आ जाती । जब किसी भौगोलिक क्षेत्र में कुछ विदेशज जातियाँ लाई जाती हैं तो वे आक्रामक हो जाती हैं और तेजी से फैलने लगती हैं क्योंकि आक्रांत भूमि में उसके प्राकृतिक परभक्षी नहीं होते। 1920 के आरंभ में आस्ट्रेलिया में लाई गई नागफनी ने वहाँ लाखों हेक्टेयर प्रक्षेत्र में तेजी से फैलकर तबाही मचा दी। अंत में नागफनी खाने वाले परभक्षी (एक प्रकार का शलभ) को उसके प्राकृतिक आवास ऑस्ट्रेलिया लाए जाने के बाद ही आक्रामक नागफनी को नियंत्रित किया जा सका। कृषि पीड़कनाशी के नियंत्रण (पेस्ट कंट्रोल) में अपनाए गए जैव नियंत्रण विधियाँ परभक्षी की समष्टि नियमन की योग्यता पर

आधारित हैं। परभक्षी, स्पर्धी शिकार जातियों के बीच स्पर्धा की तीव्रता कम करके किसी समुदाय में जातियों की विविधता (डाइवर्सिटी) बनाए रखने में भी सहायता करता है। अमेरीकी प्रशांत तट की चट्टानी अंतराज्वारीय (इंटरटाइडल) समुदायों में पाइसैस्टर तारामीन एक महत्त्वपूर्ण परभक्षी है। प्रयोगशाला के बाहर किए गए एक प्रयोग में जब एक बंद अंतराज्वारीय क्षेत्र से सभी तारामीन हटा दी गई तो अंतराजातीय स्पर्धा के कारण एक साल में ही अकशेरूकियों की 10 से अधिक जातियाँ विलुप्त हो गई।

अगर परभक्षी ज्यादा ही दक्ष है और अपने शिकार का अतिदोहन करता है तो हो सकता है शिकार विलुप्त हो जाए और इसके बाद खाने के अभाव में परभक्षी भी विलुप्त हो जाएगा। यही कारण है कि प्रकृति में परभक्षी 'विवेकी' हैं। परभक्षण के प्रभाव को कम करने के लिए शिकारी जातियों ने विभिन्न रक्षा विधियाँ विकसित कर ली हैं। कीटों और मेंढकों की कुछ जातियों परभक्षी द्वारा आसानी से पहचान लिए जाने से बचने के लिए गुप्तरूप से रंगीन (छद्मावरण) होती हैं । कुछ शिकार जातियाँ विषैली होती हैं और इसलिए परभक्षी उन्हें नहीं खाते। मॉनार्क तितली के शरीर में विशेष रसायन होने के कारण यह अपने परभक्षी (पक्षी) के लिए बहुत की अरूचिकर, यानी स्वाद में खराब है। यह दिलचस्प है कि तितली इस रसायन को अपनी इल्ली (कैटरपिलर) अवस्था में विषैली खरपतवार खाकर प्राप्त करती है।

पौधों के लिए शाकाहारी प्राणी परभक्षी हैं। लगभग 25 प्रतिशत कीट *पादपभक्षी* (फाइटोफैगस) हैं अर्थात् वे पादप रस और पादपों के अन्य भाग खाते हैं। पादपों के लिए यह समस्या विशेष रूप से गंभीर है; क्योंकि वे अपने परभक्षियों से दूर नहीं भाग सकते जैसा कि प्राणी कर सकते हैं। इसलिए पादपों ने शाकाहारियों से बचने के लिए आश्चर्यजनक रूप से आकारिकीय और रासायनिक रक्षाविधियाँ विकसित कर ली हैं। रक्षा के सबसे सामान्य आकारिकीय साधन कांटे (ऐकेशिया, कैक्टस)। बहुत से पादप ऐसे रसायन उत्पन्न और भंडारित करते हैं जो खाए जाने पर शाकाहारियों को बीमार कर देते हैं, पाचन का संदमन करते है, उनके जनन को भंग कर देते हैं या मार तक देते हैं। आपने परित्यक्त खेतों में उग रही *कैलोट्रोपिस* खरपतवार अवश्य देखी होगी। यह पौधा अत्यधिक विषैला हृदय ग्लाइकोसाइड उत्पन्न करता है और इसी कारण आपने कभी भी किसी पशु या बकरी को इस पौधे को चरते हुए नहीं देखा होगा। रासायनिक पदार्थों की व्यापक किस्में; जिन्हें हम पौधों से व्यापारिक पैमाने पर निष्कर्षित करते हैं (निकोटीन, कैफीन, क्वीनीन, स्ट्रिकनीन, अफीम, आदि)। वे पादपों द्वारा उत्पन्न होते हैं। वास्तव में ये रसायन चारकों (ग्रेजर) से बचने की रक्षाविधियाँ हैं।

(ख) ***स्पर्धा*** — जब डार्विन ने प्रकृति में जीवन-संघर्ष और योग्यतम की उत्तरजीविता के बारे में कहा तो वह निश्चयी (क़ायल) था कि जैव विकास में अंतरजातीय

स्पर्धा एक शक्तिशाली बल है। आमतौर पर यह माना जाता है कि स्पर्धा उस समय शुरू होती है जब निकट रूप से संबंधित जातियाँ उन्हीं संसाधनों के लिए स्पर्धा करती हैं जो सीमित हैं, लेकिन यह पूरी तरह से सच नहीं है। पहली बात तो यह है कि ये असंबंध जातियाँ भी एक ही संसाधन के लिए स्पर्धा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण अमेरीका की कुछ उथली झीलों में आगंतुक फ्लेमिंगो और वहीं की आवासी मछलियाँ साझा आहार, झील में प्राणिप्लवक के लिए स्पर्धा करती हैं। दूसरी बात है, स्पर्धा के संसाधनों का सीमित होना आवश्यक है। बाधा स्पर्धा में एक जाति की अशनदक्षता दूसरी जाति की बाधाकारी और संदमनी उपस्थिति के कारण घट सकती है। भले ही संसाधन (आहार और स्थान) पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों। इसलिए, स्पर्धा को एक ऐसे प्रक्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें एक जाति की योग्यता (वृद्धि की इंट्रींजिक दर 'r' के रूप में मापित) दूसरी जाति की उपस्थिति में महत्त्वपूर्ण रूप से घट जाती है। प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों में यह दर्शाना अपेक्षाकृत आसान है, जैसा कि गॉसे और दूसरे पारिस्थिकविज्ञों ने किया, कि जब संसाधन सीमित होते हैं तो स्पर्धीरूप से उत्तम जातियाँ अंततः दूसरी जातियों को विलुप्त कर देगी, लेकिन प्रकृति में इस प्रकार के स्पर्धी बहिष्कार के साक्ष्य हमेशा निर्णायक नहीं होते। लेकिन कुछ मामलों में ठोस और स्वीकार्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य मिलते तो हैं। गैलापैगो द्वीप में बकरियाँ लाई जाने के बाद एबिंग्डन कुछ एक दशक (10वर्ष) में ही विलुप्त हो गए जिसका स्पष्ट कारण था। बकरियों की अत्यधिक चारण दक्षता, प्रकृति में स्पर्धा होने का दूसरा प्रमाण 'स्पर्धी मोचन' है। स्पर्धीरूप से उत्तम जाति की उपस्थिति के कारण जिस जाति का वितरण छोटे से भौगोलिक क्षेत्र तक प्रतिबंधित हो गया है। स्पर्धी जाति को प्रयोगात्मक रूप से हटा दिए जाने पर उसकी वितरण परास नाटकीय ढंग से फैल जाती है। कॉनेल के परिष्कृत क्षेत्र प्रयोगों ने दर्शाया कि स्कॉटलैंड के चट्टानी समुद्र तटों पर बड़े और स्पर्धीरूप से उत्तम बार्नेकल *बैलेनस* की अंतरज्वारीय क्षेत्र में प्रमुखता है और इसने छोटे बार्नेकल *चैथेमैलस* को उस क्षेत्र से निकाल दिया। आमतौर पर, माँसाहारियों (कार्निवोर) की अपेक्षा शाकाहारी और पादप अधिक प्रतिकूलतः प्रभावित होते हैं।

गॉसे *'स्पर्धी अपवर्जन नियम'* यह बतलाता है कि एक ही तरह के संसाधनों के लिए स्पर्धा करने वाली दो निकटतम से संबंधित जातियाँ अनंतकाल तक साथ-साथ नहीं रह सकती और स्पर्धीरूप से घटिया जाति अंततः विलुप्त कर दी जाएगी। ऐसा तभी होगा जब संसाधन सीमाकारी होंगे अन्यथा नहीं। अधिक वर्तमान अध्ययन स्पर्धा के ऐसे घोर सामान्यीकरण की पुष्टि नहीं करते। वे प्रकृति में अंतराजातीय स्पर्धा होने को नकारते तो नहीं पर वे इस ओर ध्यान दिलाते हैं स्पर्धा सामना करने वाली जातियाँ ऐसी क्रियाविधि

विकसित कर सकती हैं जो बहिष्कार की बजाय सह-अस्तित्व को बढ़ावा दे। ऐसी एक क्रियाविधि 'संसाधन विभाजन' है। अगर दो जातियाँ एक ही संसाधन के लिए स्पर्धा करती हैं तो उदाहरण के लिए वे अशन (आहार) के लिए भिन्न समय अथवा भिन्न चारण प्रतिरूप चुनकर स्पर्धा से बच सकती हैं। मैक आर्थर ने दिखाया कि एक ही पेड़ पर रह रहीं फुदकी (वार्बलर) की पाँच निकटत: संबंधित जातियाँ स्पर्धा से बचने में सफल रहीं और पेड़ की शाखाओं और वितान पर कीट शिकार के लिए तलाशने की अपनी चारण गतिविधियों में व्यावहारिक भिन्नताओं के कारण साथ - साथ रह सकीं।

(ग) ***परजीविता*** — यह मानते हुए कि जीवन के परजीवी प्रणाली में रहने और खाने की मुफ्त व्यवस्था है तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि परजीविता, पादपों से लेकर उच्चकोटि कशेरूकियों तक इतने अधिक वर्गिकीय समूहों में विकसित हुआ है। अनेक परजीवी परपोषी-विशिष्ट के रूप में विकसित हुए हैं (वे परपोषी की केवल एक ही जाति पर परजीवी जीवन बिताते हैं), इस प्रकार परपोषी और परजीवी दो सह-विकसित होते हैं; अर्थात् एक ही परपोषी जाति के साथ सफल होने के लिए अगर परपोषी परजीवी को अस्वीकार करने या प्रतिरोध करने के विशेष साधन विकसित करता है तो परजीवी को उन साधनों को निष्प्रभावी और व्यर्थ करने के लिए साधन विकसित करने होंगे। अपनी जीवन शैली के अनुरूप परजीवी ने विशेष अनुकूल विकसित किए जैसे कि अनावश्यक संबंधी अंगों का अभाव परपोषी से चिपकने के लिए आसंजी अंगों या चूषकों की उपस्थिति पाचन तंत्र का लोप तथा उच्च जनन क्षमता। परजीवियों का जीवन चक्र प्राय: जटिल होता है जिसमें एक या दो मध्यस्थ पोषक अथवा रोगवाहक होते हैं जो इसके प्राथमिक परपोषी के परजीवीकरण को सुगम बनाते हैं। मानव यकृत पर्णाभ (लिवर फ्लूक) (पर्णाभ कृमि परजीवी — ट्रिमेटोड पैरासाइट) अपने जीवन चक्र को पूरा करने के लिए दो मध्यस्थ पोषकों जैसे घोंघा और मछली पर निर्भर करता है। मलेरिया परजीवी को दूसरे परपोषियों पर फैलने के लिए रोगवाहक (मच्छर) की आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश परजीवी, परपोषी को हानि पहुँचाते हैं; परपोषी की उत्तरजीविता, वृद्धि और जनन को कम कर सकते हैं और उसके समष्टि घनत्व को घटा सकते हैं। वे परपोषी को कमजोर बनाकर उसे, परभक्षण के लिए अधिक असुरक्षित बना देते हैं। *क्या आप ऐसा मानते हैं कि एक आदर्श परजीवी, परपोषी को हानि पहुँचाए बिना, पनप सकने योग्य होना चाहिए? तब प्राकृतिक वरण ने ऐसे पूरी तरह से अहानिकारक परजीवियों का विकास क्यों नहीं किया?*

परपोषी जीव की बाह्य पृष्ठ पर अशन (आहार पूर्ति) करने वाले परजीवी, *बाह्य परजीवी* (एक्टोपैरासाइट) कहलाते हैं। इसके प्रसिद्ध उदाहरण मानवों पर जूँ के समूह और कुत्तों पर चिचिंड़ियाँ (टिक्स) हैं। अनेक समुद्री मीन

बाह्य परजीवी अरित्रपादों (कॉपिपोड्स) द्वारा ग्रस्त हैं। *कस्कुटा* (अमरबेल) एक परजीवी पौधा है जो सामान्यत: बाड़ पादपों पर वृद्धि करता है। विकास प्रक्रिया के दौरान इसका पर्णहरित और पत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। यह जिस पोषी पादप पर रहता है उसी से अपना पोषण लेता है। मादा मच्छर को परजीवी नहीं माना जाता हालाँकि जनन के लिए इसको हमारे रक्त की आवश्यकता पड़ती है। *क्या आप बता सकते हैं क्यों?*

इसके विपरीत, अंत: परजीवी (एंडोपैरासाइट) वे हैं जो परपोषी के शरीर में भिन्न स्थलों यकृत, वृक्क, फुप्फुस, लाल रुधिर कोशिका, आदि पर रहते हैं। उनके आकारिकीय और शारीरिक लक्षण अत्यधिक सरलीकृत होते हैं जबकि उनके जनन शक्ति को बल देते हैं।

पक्षियों में *अंड परजीविता* (ब्रूड पैरासिटिज्म), परजीविता का लुभावना उदाहरण है जिसमें परजीवी पक्षी अपने अंडे परपोषी के घोंसले में देता है और परपोषी को उन अंडों को सेने (इंक्युबेट) देता है। विकास प्रक्रिया के दौरान, परजीवी पक्षी के अंडे साइज और रंग में परपोषी के अंडों के सदृश विकसित हो गए ताकि परपोषी पक्षी द्वारा विजातीय अंडों को पहचान लिए जाने और घोंसले से उन्हें निकाल दिए जाने की संभावना कम हो जाए। अपने आस पास के पार्क में प्रजनन ऋतु (बसंत से ग्रीष्म ऋतु) के दौरान कोयल की गतिविधियों का पीछा कीजिए और अंड परजीविता को होते हुए देखिए।

(घ) ***सहभोजिता*** — यह ऐसी पारस्परिक क्रिया है जिसमें एक जाति को लाभ होता है और दूसरी को न हानि न लाभ होता है। आम की शाखा पर *अधिपादप* (एपीफाइट) के रूप में उगने वाला ऑर्किड और ह्वेल की पीठ को आवास बनाने वाले बार्नेकल को फायदा होता है जबकि आम के पेड़ और ह्वेल को उनसे कोई लाभ नहीं होता। पक्षी बगुला और चारण पशु निकट साहचर्य में रहते हैं। यदि आप कृषि फार्म वाले ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं तो आपको यह दृश्य देखने को मिलेगा। सहभोजिता का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। जहाँ पशु चरते हैं उसके पास ही बगुले भोजन प्राप्ति के लिए रहते हैं क्योंकि जब पशु चलते हैं तो वनस्पति को हिलाते हैं और उसमें से कीट बाहर निकालते हैं। बगुले उन कीटों को खाते हैं अन्यथा वनस्पतिक कीटों को ढूँढ़ना और पकड़ना बगुले के लिए कठिन होता। सहभोजिता का दूसरा उदाहरण समुद्री ऐनिमोन दंशन स्पर्शक (स्टिंगिंग टेंटेकल) होते हैं, जिसमें उनके बीच रहने वाली क्लाउन मछली का है। मछली को परभक्षियों से सुरक्षा मिलती है जो दंशन स्पर्शकों से दूर रहते हैं। क्लाउन मछली से ऐनिमोन को कोई लाभ मिलता हो ऐसा नहीं लगता।

(ङ) ***सहोपकारिता*** — इस पारस्परिक क्रिया से परस्पर क्रिया करने वाली दोनों जातियों को लाभ होता है। कवक और प्रकाश संश्लेषी शैवाल या सायनोबैक्टीरिया के बीच घनिष्ठ सहोपकारी (म्यूच्युऑलिस्टिक) संबंध का उदाहरण लाइकेन

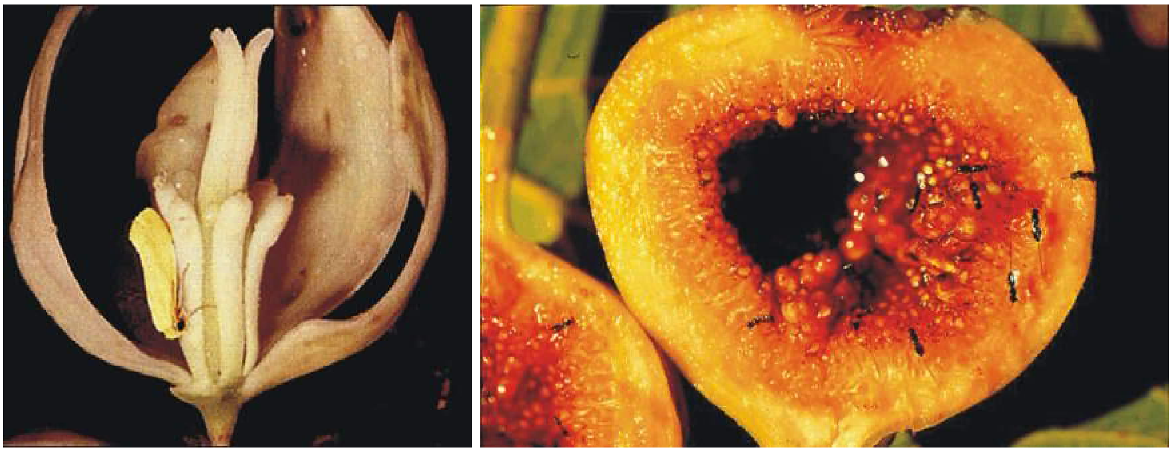

(अ) (ब)

चित्र 13.7 अंजीर और बर्र के बीच पारस्परिक-क्रिया दिखाते हुए (अ) बर्र द्वारा परागित अंजीर पुष्प (ब) अंजीर के फल में बर्र द्वारा दिए गए अंडे

में देखा जा सकता है। इसी प्रकार कवकों और उच्चकोटि पादपों की जड़ों के बीच कवकमूल (माइकोराइजी) साहचर्य है। कवक, मृदा से अत्यावश्यक पोषक तत्वों के अवशोषण में पादपों की सहायता करते हैं जबकि बदले में पादप, कवकों को ऊर्जा-उत्पादी कार्बोहाइड्रेट देते हैं।

सहोपकारिता के सबसे शानदार और विकास की दृष्टि से लुभावने उदाहरण पादप-प्राणी संबंध में पाए जाते हैं। पादपों को अपने पुष्प परागित करने और बीजों के प्रकीर्णन के लिए प्राणियों की सहायता चाहिए। स्पष्ट है कि पादप को जिन सेवाओं की अपेक्षा प्राणियों से है उसके लिए 'शुल्क' तो देना होगा। पुरस्कार अथवा शुल्क के रूप में परागणकारियों (पॉलिनेटर) को पराग (पॉलन) और मकरंद (नेक्टर) तथा प्रकीर्णकों को रसीले और पोषक फल देते हैं। लेकिन परस्पर लाभकारी तंत्र की 'धोखेबाजी' से रक्षा होनी चाहिए, उदाहरण के लिए, ऐसे प्राणी जो परागण में सहायता किए बिना ही मकरंद चुराते हैं। अब आप देख सकते हैं कि पादप-प्राणी पारस्परिक क्रिया में सहोपकारियों के लिए प्राय: *'सह-विकास'* क्यों शामिल है, अर्थात् पुष्प और इसके परागणकारी जातियों के विकास एक दूसरे से मजबूती से जुड़े हुए हैं। अंजीर के पेड़ों की अनेक जातियों में बर्र की परागणकारी जातियों के बीच मजबूत संबंध है (चित्र 13.7)। इसका अर्थ यह है कि कोई दी गई अंजीर जाति केवल इसके 'साथी' बर्र की जाति से ही परागित हो सकती है, बर्र की दूसरी जाति से नहीं। मादा बर्र फल को न केवल अंडनिक्षेपण (अंडे देने) के लिए काम में लेती है; बल्कि फल के भीतर ही वृद्धि कर रहे बीजों को डिंबकों (लार्वी) के पोषण के लिए प्रयोग करती है। अंडे देने के लिए उपयुक्त स्थल की तलाश करते हुए बर्र अंजीर पुष्पक्रम (इनफ्लोरेसेंस) को

परागित करती है। इसके बदले में अंजीर अपने कुछ परिवर्धनशील बीज, परिवर्धनशील बर्र के डिंबकों को, आहार के रूप में देती है।

आर्किड पुष्प प्रतिरूपों की आश्चर्यचकित कर देने वाली विविधता दर्शाते हैं जिसमें से अनेक सही परागणकारी कीट (भ्रमरों और गुंज मक्षिकाओं) को आकर्षित करने के लिए विकसित हुए हैं ताकि इसके द्वारा निश्चितरूप से परागण हो सके (चित्र 13.8)। सभी आर्किड यह पुरस्कार पेश नहीं करते। ऑफ्रिस नाम भूमध्य सागरीय मेडिटेरेनियन आर्किड मक्षिका (बी) के एक जाति परागण कराने के लिए 'लैंगिक कपट' (सेक्सुअल डिसीट) का सहारा लेता है। इस पुष्प की एक पंखुड़ी साइज, रंग और चिह्नों में मादा मक्षिका से मिलती-जुलती है। नर मक्षिका इसे मादा समझकर इसकी ओर आकर्षित होती है, पुष्प के साथ 'कूट (छद्म) मैथून' (स्यूडोकपुलेट) करती है। इस प्रक्रम के दौरान इस पर पुष्प से पराग झड़कर उस पर गिरते हैं जब वही मक्षिका दूसरे पुष्प से 'कूट (छद्म) मैथुन' करती है तो यहाँ शरीर पर लगे पराग डालती है और इस प्रकार पुष्प को परागित करती है। मगर विकास के दौरान किसी भी कारण से मादा मक्षिका का रंग-प्रतिरूप जरा-सा भी बदल जाता है तो परागण की सफलता कम रहेगी अत: अर्किड पुष्प अपनी पंखुड़ी को मादा मक्षिका के सदृश बनाए रखते हैं।

चित्र 13.8 आर्किड पुष्प का मक्खी द्वारा परागण

सारांश

पारिस्थितिकी (इकोलॉजी) जीवों की अपने पर्यावरण के अजीवी (भौतिक-रासायनिक कारकों) और जैविक घटकों (अन्य जातियों) के संबंधों का अध्ययन है। यह जीव विज्ञान की शाखा है और जीव विज्ञानीय संगठन के चार स्तरों से संबंधित है - जीव, समष्टि, समुदाय और जीवोम (बायोम)।

ताप, प्रकाश, जल और मृदा पर्यावरण के सबसे महत्त्वपूर्ण भौतिक कारक है जिनके प्रति जीव विभिन्न प्रकार से अनुकूलित हैं। जीवों द्वारा आंतरिक पर्यावरण (होमियोस्टैसिस) को स्थिर रखने से इष्टतम कार्य निष्पादन हो सकता है, लेकिन परिवर्तनशील बाह्य पर्यावरण के संदर्भ में केवल कुछ ही जीव (नियामक) होमियोस्टेटिस के लिए सक्षम हैं। जीव अपने आंतरिक पर्यावरण का आंशिक रूप से नियमन कर लेते हैं अथवा केवल उनके अनुरूप कर लेते हैं। कुछ अन्य जातियों ने स्थान प्रवासन अथवा समय (ग्रीष्म निष्क्रियता, शीत निष्क्रियता और उपरति/क्रमश: ऐस्टीवेशन, हाइबर्नेशन और डायपाज) में प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए अनुकूलन विकसित कर लिए हैं।

प्राकृतिक वरण द्वारा विकासीय परिवर्तन समष्टि स्तर पर होता है और इसलिए समष्टि पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। समष्टि किसी दी गई जाति के व्यष्टियों का समूह है जो सीमांकित भौगोलिक क्षेत्र में समान संसाधनों के लिए स्पर्धा करते हैं या उन संसाधनों में जन्म और मृत्यु-दरें, लिंग अनुपात और आयु-वितरण, आदि गुण होते हैं जो व्यष्टियों में नहीं होते। समष्टि में नरों और मादाओं के भिन्न आयु वर्ग का अनुपात प्रायः आयु पिरामिड के रूप में भौगोलिकतः दर्शाया जाता है। इसका आकार यह बताता है कि क्या समष्टि स्थिर है, बढ़ रही है या घट रही है।

समष्टि पर किसी भी कारक का पारिस्थितिक प्रभाव आमतौर पर उसकी साइज में प्रतिबिंबित होता है, जिसे जाति के अनुसार विभिन्न तरीकों (संख्या, जीवभार, आवरण प्रतिशत, आदि) से व्यक्त किया जा सकता है।

समष्टियाँ जन्म और आप्रवासन से बढ़ती हैं तथा मृत्यु और उत्प्रवासन से घटती हैं। जब संसाधन असीमित होते हैं तो वृद्धि प्रायः चरघातांकी है लेकिन जब संसाधन उत्तरोत्तर सीमाकारी होते जाते हैं तब वृद्धि प्रतिरूप लॉजिस्टिक (संभार तंत्रीय) हो जाती है। दोनों मामले में, वृद्धि अंततः पर्यावरण की पोषण क्षमता से सीमित होती है। प्राकृतिक वृद्धि की इंट्रीनिजक दर (r) किसी समष्टि का वृद्धि करने की जन्मजात शक्ति की माप है।

प्रकृति में भिन्न जातियों की समष्टियाँ आवास में पृथक नहीं रहती; बल्कि कई तरह से पारस्परिक क्रिया करती हैं। दो जातियों के बीच पारस्परिक इन क्रियाओं को परिणाम के आधार पर स्पर्धा (दोनों जातियों को हानि होती है), परभक्षण और परजीविता जिसमें एक जाति को लाभ होता है जबकि दूसरी को हानि, सहभोजिता जिसमें एक को लाभ पहुँचता है और दूसरी अप्रभावित रहती है अंतरजातीय परजीविता जिसमें एक को हानि होती है और दूसरा अप्रभावित रहता है तथा सहोपकारिता जिसमें दोनों जातियों को लाभ होता है। परभक्षण एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रम है जिसके द्वारा पोषी ऊर्जा अंतरण सुगम होता है और कुछ परभक्षी अपनी शिकार समष्टियों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। पादपों ने शाकाहार के विरूद्ध आकारिकीय और रासायनिक विविध रक्षाविधियाँ विकसित की हैं। स्पर्धा में, ऐसा समझा जाता है कि उत्तम स्पर्धी घटिया स्पर्धी को विलुप्त कर देता है (स्पर्धी बहिष्कार सिद्धांत), लेकिन अनेक निकट संबंधित जातियों ने विभिन्न क्रियाविधियाँ विकसित कीं, जो उनके सह-अस्तित्व को सुगम बनाती हैं। कुछ प्रकृति में सहोपकारिता के कुछ सबसे आकर्षक मामले पादप-परागणकारी पारस्परिक क्रिया में देखे जा सकते हैं।

अभ्यास

1. शीत निष्क्रियता (हाइबर्नेशन) से उपरति (डायपाज) किस प्रकार भिन्न है?
2. अगर समुद्री मछली को अलवणजल (फ्रेशवाटर) की जलजीवशाला (एक्वेरियम) में रखा जाता है तो क्या वह मछली जीवित रह पाएगी? क्यों और क्यों नहीं?
3. लक्षण प्ररूपी (फीनोटाइपिक) अनुकूलन की परिभाषा दीजिए। एक उदाहरण दीजिए।

4. अधिकतर जीवधारी 45^0 सेंटी. से अधिक तापमान पर जीवित नहीं रह सकते। कुछ सूक्ष्मजीव (माइक्रोव) ऐसे आवास में जहाँ तापमान 100^0 सेंटी. अधिक है, कैसे जीवित रहते हैं?
5. उन गुणों को बताइए जो व्यष्टियों में तो नहीं पर समष्टियों में होते हैं।
6. अगर चरघातांकी रूप से (एक्पोनेन्शियली) बढ़ रही समष्टि 3 वर्ष दोगुने साइज की हो जाती है, तो समष्टि की वृद्धि की इंट्रीनिजक दर (r) क्या है?
7. पादपों में शाकाहारिता (हर्बिवोरी) के विरूद्ध रक्षा करने की महत्त्वपूर्ण विधियाँ बताइए।
8. ऑर्किड पौधा, आम के पेड़ की शाखा पर उग रहा है। ऑर्किड और आम के पेड़ के बीच पारस्परिक क्रिया का वर्णन आप कैसे करेंगे?
9. कीट पीड़कों (पेस्ट/इंसेक्ट) के प्रबंध के लिए जैव-नियंत्रण विधि के पीछे क्या पारिस्थितिक सिद्धांत है?
10. निम्नलिखित के बीच अंतर कीजिए -
    (क) शीत निष्क्रियता और ग्रीष्म निष्क्रियता (हाइबर्नेशन एंड एस्टीवेशन)
    (ख) बाह्योष्मी और आंतरोष्मी (एक्टोथर्मिक एंड एंडोथर्मिक)
11. निम्नलिखित पर संक्षित टिप्पणी (नोट) लिखिए -
    (क) मरुस्थल पादपों और प्राणियों का अनुकूलन
    (ख) जल की कमी के प्रति पादपों का अनुकूलन
    (ग) प्राणियों में व्यावहारिक (बिहेवियोरल) अनुकूलन
    (घ) पादपों के लिए प्रकाश का महत्त्व
    (च) तापमान और पानी की कमी का प्रभाव तथा प्राणियों का अनुकूलन
12. अजीवीय (एबायोटिक) पर्यावरणीय कारकों की सूची बनाइए।
13. निम्नलिखित का उदाहरण दीजिए -
    (क) आतपोद्भिद (हेलियोफाइट)
    (ख) छायोद्भिद ''''' स्कियोफाइट
    (ग) सजीवप्रजक (विविपेरस) अंकुरण वाले पादप
    (घ) आंतरोष्मी (एंडोथर्मिक) प्राणी
    (च) बाह्योष्मी (एक्टोथर्मिक) प्राणी
    (छ) नितलस्थ (बेंथिक) जोन का जीव
14. समष्टि (पॉपुलेशन) और समुदाय (कम्युनिटी) की परिभाषा दीजिए।
15. निम्नलिखित की परिभाषा दीजिए और प्रत्येक का एक-एक उदाहरण दीजिए —
    (क) सहभोजिता (कमेंसेलिज़्म)
    (ख) परजीविता (पैरासिटिज़्म)
    (ग) छद्मावरण (कैमुफ्लॉज)
    (घ) सहोपकारिता (म्युचुऑलिज़्म)
    (च) अंतरजातीय स्पर्धा (इंटरस्पेसिफिक कंपीटीशन)

16. उपयुक्त आरेख (डायग्राम) की सहायता से लॉजिस्टिक (संभार तंत्र) समष्टि (पॉपुलेशन) वृद्धि का वर्णन कीजिए।
17. निम्नलिखित कथनों में परजीविता (पैरासिटिज़्म) को कौन सा सबसे अच्छी तरह स्पष्ट करता है –
    (क) एक जीव को लाभ होता है।
    (ख) दोनों जीवों को लाभ होता है।
    (ग) एक जीव को लाभ होता है दूसरा प्रभावित नहीं होता है।
    (घ) एक जीव को लाभ होता है दूसरा प्रभावित होता है।
18. समष्टि (पॉपुलेशन) की कोई तीन महत्वपूर्ण विशेषताएँ बताइए और व्याख्या कीजिए।

अध्याय 14

पारितंत्र

14.1 पारितंत्र संरचना एवं क्रियाशीलता

14.2 उत्पादकता

14.3 अपघटन

14.4 ऊर्जा प्रवाह

14.5 पारिस्थितिक पिरामिड

14.6 पारिस्थितिक अनुक्रम

14.7 पोषक चक्र

14.8 पारितंत्र सेवाएँ

पारितंत्र को प्रकृति की एक क्रियाशील ईकाई के रूप में देखा जाता है, जहाँ पर जीवधारी आपस में तथा आस पास के भौतिक पर्यावरण के साथ परस्पर क्रिया करते हैं। पारितंत्र का आकार एक छोटे से तालाब से लेकर एक विशाल जंगल या महासागर तक हो सकता है। कई पारिस्थितिकी वैज्ञानिक संपूर्ण जीवमंडल को विश्व (ग्लोबी) पारितंत्र के रूप में देखते हैं, जिसमें पृथ्वी के सभी स्थानीय पारितंत्र समाहित होते हैं। चूँकि यह तंत्र बहुत विशाल एवं जटिल है अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे दो आधारभूत श्रेणियों- मुख्यतः **स्थलीय** एवं **जलीय** में बाँटा गया है। जंगल, घास के मैदान तथा मरूस्थल आदि कुछ स्थलीय पारितंत्र तथा झीलें, तालाब, दलदली क्षेत्र, नदियाँ एवं ज्वार नदमुख (एस्टुअरी) आदि कुछ जलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं। मानव निर्मित पारितंत्र के रूप में शस्यभूमि एवं जलजीवशाला को माना जा सकता है।

हम सबसे पहले, पारितंत्र की संरचना को देखेंगे ताकि निवेश (उत्पादकता), ऊर्जा का स्थानांतरण (आहार शृंखला / जाल, पोषण चक्र) तथा निर्गम (निम्नीकरण एवं ऊर्जा क्षति) का अवगमन (अवबोध) कर सकें। इसके साथ ही हम चक्रों, शृंखलाओं, जाल तंत्रों के संबंधों को भी देखेंगे-जोकि तंत्र के अंतर्गत प्रवाहित इन ऊर्जाओं के परिणामस्वरूप पैदा हुए हैं।